Chapter-1

प्रथम अध्याय
****

गुजरात में हिन्दी संत काव्य परंपरा का विकास.
=+

प्रथम अध्याय

गुजरात में हिन्दी संत काव्य परंपरा का विकास.

` संत ` से तात्पर्य :-

` संत ` का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार करानेवाला. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल संत की व्याख्या देते हुए कहते हैं - " संत वह है जो विचार और कर्म के एक टकसाली साँचे में ढला हो, जिसके चित्त में न विकार हो न वक्रता, जिसके मन में शांति हो और निरंतर गतिशीलता हो, जो सत्य का स्वयं दर्शन प्राप्त करके दूसरों के लिए भी उसे उज्जवल बना सके, जिसके चरण दृढ़ता से मार्ग तय करते हुए पश्चात् पद न होते हों, जो सूर्य की सहस्त्र रश्मियों के समान जीवन के अनेक भजनानन्दी सूत्र चारों ओर बिखेर रहा हो । संत शक्ति का पुंज होता है, उसकी गति और मति अप्रतिहत होती है । ...... अतएव संत अपने भगवान को भूतल के प्राणियों में ढूँढ़ते हैं . " 1

` संत-काव्य ` का अर्थ :-

भारतीय संत-काव्य भारत की एक विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा एवं उस परंपरा के अंतर्गत चली आ रही दार्शनिक विचारधारा को अभिव्यक्त करने एवं उसका प्रतिनिधित्व करने के कारण हमारे सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है । संत- काव्य के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ० रामकुमार वर्मा कहते हैं - " हिंदू धर्म पर आघात होते ही यद्यपि जनता विचलित हो उठी.. ..... फलत: धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने लगा, जिसने हमारे साहित्य में एक नवीन धारा की सृष्टि कर दी । यह नवीन धारा संत-काव्य के रूप में प्रवाहित हुई. " 2

विकास के विभिन्न कारण :-

भारत के विभिन्न प्रांतों की तरह गुजरात में भी हिंदी काव्य परंपरा विकसित हुई है । यह परंपरा विशेष रूप से भारतीय संत परंपरा की सशक्त-समृद्ध कड़ी है एवं वैशिष्टय पूर्ण भी है . आचार्य विनय मोहन शर्मा ने ` हिन्दी को मराठी संतों की देन ` की भूमिका में लिखा है कि " समस्त भारतवर्ष में महाराष्ट्र ही ऐसा

---

1. साहित्य संदेश- संत साहित्य विशेषांक- जुलाई-अगस्त 1958, पृ. 6 .
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 193.

क्षेत्र है जहाँ अनेक संतों की मराठी के साथ साथ हिंदी रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं ." परन्तु आधुनिक अनुसंधानों के फलस्वरूप यह सिद्ध हो चुका है कि महाराष्ट्र के अतिरिक्त अन्य अहिन्दी प्रदेशों में भी अपनी प्रादेशिक भाषा के अलावा हिंदी में भी साहित्य सर्जन हुआ है ।

गुजरात की संत-काव्य परंपरा अपनी विशेषता लिए हुए है. संत-परंपरा के संदर्भ में एक निर्देश करना आवश्यक है कि विभिन्न कवियों एवं विभिन्न संप्रदायों का परिचय यथास्थान दिया हुआ होने से यहाँ मात्र इनका नामोल्लेख ही किया गया है .

गुजरात की हिन्दी संत काव्य परंपरा हिंदी भाषी क्षेत्रों की परंपरा से कई बातों में भिन्न है. इसमें सिर्फ सामान्य संत मत, वैष्णव भक्ति, धर्म, नीति आदि का ही वर्णन न होकर राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं सुधारक प्रवृत्तियों का भी आलेखन हुआ है. संक्षेप में गुजरात की हिंदी संत-काव्य परंपरा का व्यक्तित्व अपने वैशिष्ट्य के कारण भिन्न है ।

अहिन्दी भाषी प्रदेश गुजरात में विभिन्न संत कवियों की वाणी क्यों प्रचलित एवं प्रसरित हुई, इसे अच्छी तरहसे जानने के लिए हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के विभिन्न कारणों पर भी विचार करना आवश्यक है. इसे ध्यान में रखते हुए यहाँ पर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के विभिन्न कारणों का सांकेतिक रूप में लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जा रहा है .

गुजरात में हिन्दी संत-काव्य परंपरा के विकसित होने के कई कारण हैं . भारत के सभी प्रांतों ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है . सबसे पहले गुजरात की भौगोलिक स्थिति ने हिन्दी काव्य परंपरा के विकास में क्या योगदान दिया है उसे देख लें .

<u>भौगोलिक स्थिति -</u>

` गुजरात एक दर्शन ` के लेखक श्री शिवप्रसाद राजगोर गुजरात की भौगोलिक सीमाओं का वर्णन करते हुए भूमिका में लिखते हैं कि " उसके उत्तर में मारवाड, मेवाड, सिरोही, और कच्छ का मरु स्थल तथा अरवल्ली गिरिमाला का आबू, आरासुर और तारंगा पर्वत हैं. पूर्व में बाँसवाडा, खानदेश, अलिराजपुर

तथा सह्याद्रि गिरिमाला हैं. पश्चिम में अरबी समुद्र, खंभात की खाडी और कच्छ की खाड़ी हैं I....... इस प्रकार उत्तर में मरु प्रदेश और पहाड़ों से, दक्षिण में तथा पूर्व में पहाडों और जंगलों से तथा पश्चिम में छिछले अशांत समुद्र से गुजरात आरक्षित है. " इस प्रकार गुजरात की सीमाओं पर विचार करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तर और उत्तर पूर्वी सीमाओं को छोड़कर अन्य सभी सीमाओं पर प्राकृतिक अवरोध अधिक है. हिन्दी भाषी प्रदेश राजस्थान और मालवा के अधिक निकट होनेसे गुजरात के साथ इन प्रदेशों का आदान प्रदान प्राचीन काल से रहा है. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि भौगोलिक दृष्टि से उत्तर से विंध्य के पार पहुँचने के लिए गुजरात प्रदेश सबसे अधिक सुगम है,इसलिए बहुत प्राचीनकाल से गुजरात मध्यदेश का अपनिवेश सा रहा है. [1]

सारांश यह कि गुजरात दक्षिण प्रवेश का सुगम मार्ग है, इसलिए गुजरात में स्वाभाविकता से हिंदी संत परंपरा का विकास हुआ है.

राजनैतिक परिस्थिति

भौगोलिक स्थिति ने गुजरात और हिंदी भाषी प्रांतों में जो घनिष्टता उत्पन्न की थी, इसे राजनैतिक परिस्थितियों ने और अधिक दृढ़ किया. प्रागैतिहासिक काल से राजपूताना और गुजरात में मध्यदेश से शासक आते रहे हैं ऐसी कथाएँ उपलब्ध हैं. इसमें यादवों द्वारा गुजरात में द्वारका की स्थापना की भी कथा है. जैन परंपरा के अनुसार गुजरात के प्रथम शासक, चालुक्य वंशीय राजा थे, जो गंगा के कन्नोज प्रदेश से आये थे. [2] यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि गुजरात के अधिकांश क्षेत्रों पर मध्यदेश के शासकों का आधिपत्य रहा हो, पर इतना तो निश्चित है कि इस समय गुजरात मध्यदेश से ही सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक प्रभावित रहा है. [3]

ऐतिहासिक काल में भी चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर गुप्त साम्राज्य के अंत

1. वृजभाषा, पृ. 3
2. भारत का भाषा सर्वेक्षण-ग्रियर्सन-अनुवादक उदयनारायण तिवारी, पृ. 315.
3. गुजरात ऐंड इट्स लिटरेचर- के० एम० मुनशी, पृ. 8.

तक गुजरात मालवा के साथ और कभी-कभी राजपूताना के साथ संयुक्त रूप से शासित होता रहा है.[1] इसके पश्चात् सन् 940 तक गुजरात का बड़ा हिस्सा कन्नौज द्वारा शासित होता रहा है. सारांश यह कि गुजरात अपना स्वतंत्र रूप प्राप्त करे उसके पहले निरंतर मध्यदेश के साथ राजनैतिक इकाई के रूप में था. सन् 942 में मूलराज द्वारा अनहिलवाड़ विजय से गुजरात को आधुनिक रूप मिला. सन् 1050 तक गुजरात धार के परमार राजाओं के आधिपत्य में रहा. सिद्धराज, कुमारपाल आदि शासकों ने मालवा और राजपूताना के कुछ भाग पर अपना अधिकार बनाये रखकर गुजरात और हिन्दी भाषी प्रदेश के राजनैतिक ऐक्य को अक्षुण्ण रखा .

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मुसलमानों के शासन के पूर्व गुजरात मालवा और राजपूताना के साथ संयुक्त रूप में शासित रहा है. मुसलमानों के शासनकाल में हिंदी प्रदेशों से गुजरात का राजनैतिक संबंध थोड़ा-सा भिन्न रहा था क्योंकि वह स्वयं राजनैतिक इकाई बन गया था, पर मुसलमान शासनकाल में सौराष्ट्र के हिन्दू राजाओं ने अपना संबंध राजस्थान के राजपूतों के साथ रखा . मुसलमान शासक उत्तर प्रदेश से आते थे, अतः वे मध्यदेश की भाषा एवं संस्कृति भी साथ में लाते थे . इस प्रकार मुसलमान शासनकाल में भी गुजरात में हिन्दी का सम्यक् विकास हुआ.

भाषायी समानता -

गुजराती हिन्दी से साम्य रखती है. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने गुजराती को राजस्थानी के साथ पश्चिमी भाषा समूह में स्वीकृत किया है .[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि गुजराती राजस्थानी के विकास की अंतिम सीढ़ी है, जो मूलतः मध्यदेश की भाषा की एक शाखा है.[3] गुजराती के विद्वान वैयाकरण रायबहादुर कमलाशंकर त्रिवेदी ने गुजराती को हिन्दी का पुराना प्रांतीय रूप मानता है.[4]

1. गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर- के० एम० मुनशी, पृ. 8.
2. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास-डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ. 175.
3. हिन्दी भाषा का इतिहास- डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 55.
4. गुजराती भाषानुं बृहद व्याकरण, पृ. 7.

दोनों भाषाओं के शब्दों में साम्य होने के उपरांत दोनों की वाक्य रचना में भी साम्य है. संक्षेप में कहा जाय तो गुजराती भाषा अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी के अत्यधिक निकट है, इसलिए गुजरात में हिन्दी का विशेष रूप से विकास हुआ है.

गुजरात में हिन्दी संत-काव्य परंपरा के विकास में अनेक धर्मों, संप्रदायों तथा उनके आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है. जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट है कि इस प्रदेश में जितने धार्मिक संप्रदायों और धर्मों का जितना पल्लवन और विकास हुआ है, उतना शायद अन्य प्रदेशों में नहीं हो पाया है. वैष्णव आचार्यों ने गुजरात में हिंदी काव्य परंपरा को प्रतिष्ठित एवं विकसित करने में सहायता प्रदान की है. महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथजी ने गुजरात की अनेक बार यात्राएँ की थीं, जिनके फलस्वरूप गुजरात में आज भी पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की संख्या सर्वाधिक है.[1] इन पुष्टिमार्गीय भक्तों की भाषा ब्रज थी, जिससे गुजरात में ब्रज काव्य शैली का प्रचलन रहा.

वैष्णव कवि भालण, नरसिंह महेता, बैजनाथ, कृष्णदास, मीरां, मुकुंद गुगली, श्रीकमदास, दयाराम, हर्षदास, गिरधर एवं जामसुता प्रतापबाला ने ब्रज में भक्ति ज्ञान और वैराग्य से सभर काव्य सर्जन करके गुजरात की हिंदी को साहित्य के क्षेत्र में प्रस्थापित किया.

जैन कवि आनंदघन, ज्ञानानंद, यशोविजय, विनय विजय किशनदास आदि ने सांप्रदायिकता से परे ब्रज में काव्य सर्जन किया है.

निर्गुण संत कवि अखा, दादू, प्राणनाथ, जीवनदास, प्रीतम, भाणदास, रवि साहेब, भीम साहेब, मोरार साहेब, निरांत, धीरा भगत आलोच्य कवि करुणासागर, भोजा भगत, दीनदरवेश, मनोहर, छोटम और अनवर आदि ने हिंदी को संत टकसाल की सधुक्कड़ी भाषा का रूप दिया.

किंवदन्ती तो यहाँ तक है कि कबीर अपने पुत्र के साथ गुजरात की यात्रा के लिए आये थे और इन्होंने यहाँ के प्रसिद्ध स्थलों की यात्राएँ की थीं.

---

1. व्रजभाषा - डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 15.

भुगुकच्छ से सात मील दूर ` कबीरवट ` की कथा का संबंध इनके इसी प्रवास से जोड़ा जाता रहा है. डॉ० अंबाशंकर नागर ने इस संबंध में लिखा है कि " कबीर का गुजरात में आगमन संदिग्ध हो सकता है, पर मध्यकालीन गुजराती संत कवियों पर कबीर का जो प्रभाव पड़ा उसे नकारा नहीं जा सकता. " [1]

सूफी संत कवि शेख बहाउद्दीन बाजन, काजी महमूद दरियायी, शाह अलीआमधनी आदि ने भी हिन्दी के विकास में अपना योगदान दिया है.

स्वामीनारायण संप्रदाय के कवि मुक्तानंद, निष्कुलानंद, ब्रह्मानंद, सहजानंद स्वामी, प्रेमानंद सखी आदि कवियों ने समाजसुधार का कार्य करते हुए ब्रज में काव्य सर्जन किया है.

सारांश यह कि भिन्न-भिन्न धर्म संप्रदायों के कवियों ने हिन्दी को अपनी बोधिनी भाषा के रुप में स्वीकृत किया था. इस प्रकार गुजरात में हिन्दी संत-काव्य परंपरा के विकास में इन संप्रदायों का अत्यधिक महत्त्व है. गुजरात में रवि पंथ, दादू पंथ, निरांत पंथ, रामानंदी पंथ, राधास्वामी पंथ, कबीर पंथ, प्रणामी पंथ, आलोच्य कवि करुणासागर का कायम पंथ आदि निर्गुणिया पंथ हैं , जिनकी भाषा सधुक्कड़ी हिन्दी है. ये पंथ भारतभर में व्याप्त हैं .

सांप्रदायिक कवियों के उपरांत गुजरात के राजाओं ने भी हिंदी के विकास में अपना योगदान दिया है. इन महाराजाओं में से राजकोट के महेरामण-सिंह, कच्छ के महाराव लखपतिसिंह, भावनगर के राजा विजयसिंह, जामनगर के राजा जाम साहेब, धांगध्रा के राजा अमरसिंह और इनके पुत्र राजकुमार रणमल्ल-सिंह, मानसिंह जी, कांकरेची ठकुरानी, हरीजी रानी, जामसुता प्रतापबाला, सयाजीराव गायकवाड आदि के नाम उल्लेखनीय हैं . इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये महाराजे न केवल साहित्यकारों को आश्रय देकर प्रोत्साहित करते थे, वरन् स्वयं काव्य सर्जन द्वारा हिन्दी की श्रीवृद्धि में कलात्मक एवं क्रियात्मक योग-दान देते थे. इनमें से कच्छ के महाराव लखपतिसिंह एवं वडोदरा के राजा सयाजी-राव के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीयहैं .

---

1. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ, पृ. 7.

महाराव श्री लखपतजी वृजभाषा काव्यशाला

डॉ० कुँवरचंद्रप्रकाशसिंह के अनुसार इसका नाम ` भुज [कच्छ] की व्रज भाषा पाठशाला ` है. वास्तव में इसका नाम ` महाराव श्री लखपतजी वृजभाषा काव्यशाला, भुजनगर ` ही था .[1] इसकी स्थापना सन् 1749 में हुई.[2]

महाराव लखपतिसिंह ने काव्यशास्त्र के व्यवस्थित अध्ययन के लिए कच्छ के अहिंदी प्रदेश में व्रज भाषा के अध्ययन-अध्यापन का स्थायी प्रबंध करके न केवल अपने साहित्यिक प्रेम का परिचय दिया, वरन अपने सांस्कृतिक जगत को एक नया मोड़ दिया . इसमें निर्धारित समय में अध्ययन करने वाले छात्र को ` कवि ` की उपाधि दी जाती थी.

काव्यशाला के निर्वाह के लिए ` रेहा ` नामक गाँव का दान महाराव ने किया, जिसकी वार्षिक 3000 रु० की आमदनी से आचार्य एवं छात्रों का निर्वाह होता था. भुज की व्रजभाषा काव्यशाला में सन् 1749 से 1947 तक हिंदी साहित्य का अध्ययन, सर्जन एवं पठन-पाठन होता रहा.

पाठ्यक्रम -

इस पाठशाला का पाठ्यक्रम इस प्रकार का था.

1. भाषा व्याकरण	2. मानमंजरी नामक कोष	3. अनेकार्थ मंजरी
4. छंद श्रृंगार पिंगल	5. चिंतामणि पिंगल	6. छंद भास्कर पिंगल
7. हमीर पिंगल	8. लखपति पिंगल	9. नागराज पिंगल
10. भाषा भूषण	11. बंशीधर अलंकार ग्रंथ	12. कविप्रिया
13. रस रहस्य	14. काव्य कुतोहल	15. रसिकप्रिया
16. सुंदर श्रृंगार	17. बिहारी सतसई	18. वृंद सतसई
19. देवीदास कृत राजनीति.	20. नाथूराम कृत राजनीति	

1. महाराव लखपतिसिंह व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व - डॉ० कांतिलाल शाह, पृ. 209.
2. कवि गोप कृत रुक्मिणीहरण, सं० आचार्य कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह , प्रस्तावना पृ. 2.

21. सुंदर विलास	22. ज्ञान समुद्र	23 पृथ्वीराज रासो
24. अवतार चरित्र	25. कृष्णबावनी	26. कवित बंध रामायण
27. रामचंद्रिका	28. रागमाला	29. सभा विलास.

इस प्रकार देखा जा सकता है कि इस काव्यशाला में काव्य के शास्त्रीय पक्ष और व्यावहारिक पक्ष के उपरांत तत्कालीन राजनीति से भी छात्रों को अवगत कराया जाता था. उपर्युक्त पाठ्यक्रम 5 वर्ष का था. विशिष्ट प्रतिभा संपन्न छात्र इसे दो वर्षों में पूरा कर सकते थे.

इस काव्यशाला के आचार्यों की परंपरा इस प्रकार है ---
कुँवर कुशल, वीरकुशल, सिरदार कुशल, गुलाब कुशल, लक्ष्मी कुशल, कल्याण कुशल, कीर्ति कुशल, विनीत कुशल, ज्ञान कुशल, गुलाब कुशल, वल्लभ कुशल, जीवन कुशल, पुरुषोत्तम ब्राह्मण, प्राणजीवन त्रिपाठी -

इस काव्यशाला के प्रमुख छात्रों में ब्रह्मानंद, लाल कवि, गोप, दलपतराम, गोविंद गिल्लाभाई आदि के नाम लिये जा सकते हैं. यह काव्यशाला लखपतिसिंह के साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रामाणिक दस्तावेज है.

कवीश्वर दलपतराम शीर्षक पुस्तिका में न्हानालाल कवि इस काव्यशाला के संदर्भ में कहते हैं " काव्यकला की शिक्षा देने के लिए भुज (कच्छ) में एक पाठशाला थी. कवियों का सृजन करनेवाली यह काव्य पाठशाला संभवतः सारी दुनिया में अद्वितीय थी. अनेक काव्यरसिक इस संस्था में पढ़कर राजदरबारों में राजकवि बने हैं. इस काव्यशाला में काव्यशास्त्र सिखाये जाते थे. ....
....
भुज, कच्छ के महाराव का सिंहासन है, पर भुज की पाठशाला कच्छ के महाराव का कीर्ति मुकुट है. " [1]

सयाजीराव गायकवाड ने हिन्दी के विकास में अपना मूल्यवान योगदान दिया है. वे साहित्य प्रेमी राजा थे . इन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन की प्रवृत्तियों को गतिमान रखने के लिए कई बार दान दिया था. वे विद्वान लेखकों से हिंदी में ग्रंथों का प्रणयन कराते थे और राज्य की ओर से इन्हें प्रकाशित भी करवाते थे.

---

1. सात सहेली दुलेराय काराणी, अखंड आनंद, अक्टूबर 1980, पृ. 201.

इनके समय में राज्य के सभी कर्मचारियों को हिन्दी का ज्ञान रखना अनिवार्य था. शिक्षा संस्थाओं में भी हिन्दी का पठन-पाठन अनिवार्य रूप से होता था.[1] न्यायालयों में भी हिन्दी में कार्यवाही होती थी और वकीलों को अनिवार्य रूप से हिन्दी को पढ़ना पड़ता था. सन् 1930-35 के आसपास जबकि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी के पठन-पाठन की सम्यक् व्यवस्था नहीं थी , तब भी वडोदरा राज्य में राज्य कर्मचारियों के लिए हिन्दी की परीक्षा पास करना अनिवार्य था. आज भी लिपि के संबंध में अनेक मतभेद हैं और देवनागरी लिपि को सर्वमान्य मान्यता नहीं प्राप्त हो पायी है, किंतु गायकवाड के राज्य में देवनागरी लिपि को मान्यता ही नहीं प्राप्त थी वरन् क्रियात्मक रूप में भी इसका व्यवहार होता था. महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में सभी शिक्षकों को हिन्दी की निर्धारित परीक्षा देनी पड़ती थी, जिसके लिए विश्वविद्यालय की ओर से नियमित वर्ग भी चलाये जाते थे.

ईसर बारोट, सासांझुला जैसे चारण कवियों ने भी हिंदी के विकास में अपना योगदान दिया है. इनके उपरांत पुहकर, गंजन, उदयपुर के महाराजा जगतसिंह के आश्रित कवि दलपतिराय और बंशीधर, झालावाड़ के औघड एवं अहमदाबाद के कवीश्वर केवलराम, आदितराम एवं उत्तमराम ने भी काव्य सर्जन किया है.

गुजरात की समृद्धि से आकर्षित होकर राजस्थान और मध्यदेश से बहुत से व्यापारी गुजरात में आकर स्थायी हुए और इनके साथ हिंदी भी गुजरात में आयी. इसके उपरांत गुजरात की व्यापारप्रियता के कारण गुजरात की प्रजा विभिन्न हिंदी भाषी प्रदेशों के संपर्क में आयी होंगी और इस प्रकार गुजरात में हिन्दी का विकास हुआ होगा .

राधाबाई, कुमानबाई, गौरीबाई, जाड़ेजा जामसुता प्रतापबाला, काकरेजी ठकुरानी, हरीजीरानी आदि गुजरात की कवयित्रीओं ने और संत होथी आदि मुसलमान संतों ने भी काव्य सर्जन करके अपना योगदान दिया है.

इसके अलावा काका कालेलकर, पंडित सुखलाल, दयानंद सरस्वती जैसे विद्वानों ने एवं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, गुजरात विद्यापीठ एवं बम्बई

---

1. श्री सयाजीराव गौरव ग्रंथ- सं० रामचंद्रराव शामराव माने पाटील, पृ.248-49.

विद्यापीठ की हिन्दी की परीक्षाओं ने भी आधुनिक युग में हिंदी के विकास में अच्छा सहयोग दिया है.

गुजरात की धरती पर अनेक तीर्थधाम आये हुए हैं, इनमें से द्वारका और सोमनाथ ऐसे धाम हैं, जो चतुर्धाम यात्रा में शामिल हैं . अतः स्वाभाविक रूपसे समग्र देश की जनता का यहाँ आवागमन रहा. राम और कृष्ण भक्ति का प्रचार यहाँ भी अधिक मात्रा में रहा. इन दोनों का संबंध हिन्दी भाषी क्षेत्रों से है. कृष्ण भक्ति और द्वारका ये दोनों एक दूसरे के पर्याय हो गये हैं. इन्हीं कारणों से गुजरात और हिंदी भाषी प्रदेशों में विचारों -भावों का आदान-प्रदान होता रहा है. इस कारण भी यहाँ हिन्दी के विकास को पर्याप्त बल मिला है.

ऊपर जितने भी कारण बताये गये हैं इन सबमें धार्मिक कारण अधिक सक्षम और स्थायी सिद्ध होता है, क्योंकि इसका सीधा संबंध भावनाओं से होता है. यही कारण है कि ` आसेतु हिमालय ` पर्वत के भूखंड के लिए वैदिक काल से ही एक लगाव का बोध होता रहा है. मध्यकाल में जबकि सभी तंत्र तार तार हो चुके थे, तब भी संपूर्ण राष्ट्र के लोग इसी धार्मिक भावात्मक एकता के सूत्र में गूँथे हुए थे और इसी कारण समग्र देश में इस काल में हिन्दी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं .

डाह्याभाई देरासरीने[1] तत्कालीन समाज की हिन्दी-रुचि तथा हिन्दी अध्ययन की कठिनाइयों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि उन दिनों जनसमाज के बहुश्रुत जन गुजरात में व्रज भाषा का अध्ययन करते थे. नंददास रचित मानमंजरी, अनेकार्थ मंजरी एवं सुंदर श्रृंगार, कविप्रिया, रसिकप्रिया, भाषाभूषण, बिहारी सतसई, वृंद सतसई आदि ग्रंथों का अध्ययन किया जाता था. वृद्धावस्था में तुलसी कृत रामायण एवं योगवाशिष्ट जैसे ग्रंथ पढ़े जाते थे. इनके अलावा राजकोट के युवराज महेरामणसिंह रचित प्रवीणसागर के छंद एवं किशनदास की किशनबावनी के छंद जनसमाज में बड़े लोकप्रिय थे. लल्लूजीलाल का प्रेमसागर जो व्रज भाषा गद्य का

---

1. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 2,3.

सुंदर ग्रंथ है, बड़े आदर से पढ़ा जाता था. व्रज के साथ-साथ संस्कृत श्लोक मुखपाठ किये जाते थे. जिज्ञासुओं को व्रज के अध्ययन के साधन जुटानेमें बड़ी कठिनाई रहती थी. वे व्रज के विद्वानों के पास जाकर ' मानमंजरी 'से अध्ययन का आरंभ करते थे. इसके बाद ' अनेकार्थ मंजरी ' का अध्ययन किया जाता था. इन दोनों ग्रंथों के अध्ययन से जिज्ञासु काफी शब्दों से अवगत हो जाते थे.

सारे विश्व में भारत को रत्नों की खाण कहा गया है. विश्व के लोगों को प्रेम और शांतिका सदउपदेश देनेवाले अवतारों का प्रादुर्भाव भी भारत में हुआ है. भारत वर्ष के पास अपनी एक समृद्ध आध्यात्मिक परंपरा रही है . विश्व की कोई जाति या देश संभवत: इस संबंध में इतना महिमामय नहीं रहा, जितना कि भारतवर्ष . यहाँ हम शताब्दियों से आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिज्ञ महापुरुषों की एक लंबी श्रृंखला देखते हैं, जिन्होंने समाज और देश के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया हो. गुजरात भी इस प्रकार की समर्पित वृत्तिवाले रत्नों से भरा प्रदेश रहा है.

ऊपर हमने गुजरात प्रदेश में हिन्दी के विकास एवं योगदान पर विचार किया है. अब हम यह देखेंगे कि ऐतिहासिक रूप में हिन्दी के विकास का प्रारंभ कबसे हुआ .

डॉ० विलास गुप्त का [1] कथन है कि " अब तक प्राप्त पुष्ट प्रमाणों के आधार पर गुजराती भाषी चक्रधर को प्रथम हिन्दी कवि होने का श्रेय प्राप्त होता है. " श्री के० का० शास्त्री गुजरात में भालण को व्रज भाषा का प्रथम कवि मानते हैं. डॉ० महोब्बतसिंह चौहान ने [2] तेरहवीं और चौदहवीं शती में क्रमश: ' रेवंतगिरि रासो ' के कवि विजयसेन सुरी और ' रणमल छंद ' के कवि श्रीधर व्यास का नामोल्लेख करते हुए इन्हें रासो परंपरा का बताया है. डॉ० नागर गुजरात में 15 वीं शती से आज तक 300 से अधिक कवि होने की बात करते हैं. वास्तव में देखा जाय तो क्रमबद्ध विकास की दृष्टि से गुजरात में हिंदी के

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य को अहिंदी लेखकों का योगदान, पृ. 33.
2. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 331.

विकास का प्रारंभ 15 वीं शती से मानना ही अधिक समीचीन होगा.

अब हम गुजरात के कतिपय हिन्दी कवियों का परिचय प्राप्त करेंगे.

चक्रधर - सं. 1250-1330 वि0

स्वामी चक्रधर का जन्म भरुच में सं. 1250 वि0 में हुआ था. वे महानुभाव संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं. इनके पिता का नाम विशालदेव था . इनकी पत्नी का नाम कमला था. एक बार वे जुए में सर्वस्व खोने के बाद पत्नी के सामने लाचार होकर खड़े रहे. पत्नी ने इन्हें उलाहना दिया. वे गृहत्याग करके रामटेक की यात्रा के लिए महाराष्ट्र की ओर चल पड़े. विदर्भ के गोविंद प्रभु से इन्होंने दीक्षा ली. इनके बढ़ते हुए यश को देखकर सं. 1330 वि0 में पण्डित हेमाद्रि द्वारा इनकी हत्या हुई. [1] महानुभाव संप्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि इनकी हत्या के बाद भी वे जीवित रहे और उत्तरापथ को चल दिये. [2]

चक्रधर की `चौपदी` प्रसिद्ध है. इनकी भाषा में हिन्दी, गुजराती एवं मराठी का समन्वय है.

पीपा - सं. 1410 -1460 वि0

डॉ0 पितांबरदत्त बड्थ्वाल ने पीपा का समय सं. 1410 से 1460 वि0 तक माना है. [3] फर्कुहर ने इनका जन्मकाल सं. 1482 वि0 माना है. [4] पीपा गांगरौनगढ (राजस्थान) के राजा थे. वे पहले देवी के उपासक थे, फिर देवी के कहने से वे रामानंद के शिष्य बन गये. स्वामी ने पीपा की कसौटी की. पीपा ने अपनी संपत्ति गरीबों को बाँट दी. स्वामीजी की आज्ञा से पीपा कुए में गिरने जा रहे थे, तब स्वामी ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया. स्वामीजी धर्म

1. मराठी संतों का सामाजिक कार्य- डॉ0 कोलते, पृ. 8.
2. वही, पृ. 9
3. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ. 101.
4. एन आउटलाइन ऑफ रिलीजस लिटरेचर ऑफ इंडिया, पृ. 23.

प्रचारार्थ अपने शिष्यों को देश के विभिन्न भागों में भेजते थे. पीपा और योगानंद को गुजरात में रहकर धर्म और भक्ति का प्रचार करनेका आदेश मिला. पीपा की गद्दी पावागढ़, झामड़ा, बेट द्वारका, गांगरौनगढ़ तथा काठियावाड़ में है.

पीपा ने अपने पदों में ` जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे ` के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है. इनका मानना है कि मानव-शरीर में ही इष्टदेव, मंदिर, धूप-दीप, नैवेध और फूलादि पूजन की सामग्रियाँ विधमान हैं. निर्गुणिया शिष्यों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है.

शेख बहाउदीन बाजन सं. 1444-1562 वि०

गुजरात में ` गूजरी ` की सुदीर्घ परंपरा विधमान है. शेख बहाउदीन बाजन इस परंपरा के प्राचीन एवं प्रमुख कवि हैं. [1] वे सूफी संत थे. इनकी भाषाकी प्रकृति खड़ी बोली की है, जो ` दक्खिनी ` से साम्य रखती है.

कबीरदास - सं 1455-1575 वि०

कबीरदास भारत की धरती पर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दूत बनकर अवतरित हुए थे, जिन्होंने अपने काव्य एवं उपदेशों के द्वारा विश्व को एक नया आलोक दिया. इनका जन्म सोमवार ज्येष्ठ पूर्णिमा सं 1455 को [2] बनारस में एक विधवा ब्राह्मणी के पेट से हुआ था. समाज के डर से विधवा ब्राह्मणी ने इन्हें ताल के किनारे छोड़ दिया. संयोग से काशी का मुसलमान जुलाहा निरु वहाँ से गुजरा. वह निःसंतान था, उसने रोते हुए बच्चे को उठा लिया. जुलाहा दंपति ने इनका लालन-पालन किया. कबीरदास रामानंद के शिष्य थे. इनका लालन-पालन जिस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक रहा, उसी प्रकार इनकी मृत्यु भी ऊँच-नीच के भेद में माननेवाले समाज को चुनौती के रुप में हुई. इन्होंने कहा है--

सकल जन्म शिवपुरी गँवाया,
मरती बेर मगहर उठ धाया ।

---

1. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन - डॉ० रामकुमार गुप्त, पृ. 99.
2. साहित्य कोश भाग-2 सं. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 62.

मगहर में सं. 1575 में इनकी मृत्यु हुई. जीवनभर ऊँच-नीच के भेदभावों के साथ अविरत संघर्ष करनेवाले वीर ने अपनी मौत से भी इन भावनाओं का विरोध किया.

कबीरदास के संपूर्ण साहित्य को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं - साखी, सबद और रमैनी. कबीर मुख्यतः समाज सुधारक थे किन्तु इनमें कवित्वशक्ति भी थी. वे अद्वैत से प्रभावित रहे हैं, साथ ही इनमें भक्ति क्षेत्र की दीनता, विनम्रता और आत्म-समर्पण के भाव भी विद्यमान थे. तात्पर्य यह कि कबीरदास जैसे अक्खड व्यक्ति किसी ' वाद ' से बँधकर न चलकर स्वानुभूति के आधार पर, व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए ब्रह्म की अनुभूति की ओर अग्रसर होते रहे.

कवि का दायित्व बहुत ऊँचा होता है. कवि अपने साहित्य के द्वारा प्रच्छन्न रूप से समाजसुधारका कार्य करता है. कवि के साहित्य का मूल्यांकन लोक-मंगल के आधार पर होता है. कबीर ने निर्भय होकर जातिवाद, बाह्याचार एवं झूठे भक्तों पर जोरदार प्रहार किये हैं. कबीर का उद्देश्य फटकारों के द्वारा समाज को एक नयी दिशा प्रदान करना है. इन्होंने गुजरात में कबीरवड और गिरनार की यात्राएँ भी की थीं.

कबीर ने अपने दायित्व का संपूर्ण निर्वाह करते हुए तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न बाह्याचारों, आडम्बरों, अंध विश्वासों, जातिगत कृत्रिम भेद-भावों एवं धर्मांधता पर खुलकर बड़ी निर्ममता से प्रहार किया है और समाज को इन संसर्गजन्य बीमारियों से छुटकारा दिलाने का सुगम- सरल मार्ग बताया है .

कबीर ने अपनी सधुक्कडी वाणी के द्वारा गुरु का महत्व, जीव-शिव का एकत्व, संसार की क्षणभंगुरता, परमात्मा की सर्वव्यापकता एवं मानवजीवन की निर्मलता के महत्व का प्रतिपादन किया है. इनका दृष्टिकोण हमेशा मानवता-वादी रहा है .

आज हमें कबीरदास के नेतृत्व की जरूरत है, आज जब वैज्ञानिक प्रगति के द्वारा चाँदकी धरती पर जानेवाला मनुष्य अपने पड़ोसी को पहचान नहीं सकता, यह इस युग की दर्दनाक वास्तविकता है. ऐसे समय में कबीरदास का मानवतावादी दृष्टिकोण ही समाज को सही दिशा प्रदान कर सकता है.

नरसिंह महेता - सं 1470-1536 वि०

नरसिंह महेता का अस्तित्वकाल सं 1470 से 1536 वि० के बीच माना जाता है.[1] इनका जन्म जूनागढ के निकटवर्ती तलाजा नामक गाँव में हुआ था. ये नागर ब्राह्मण थे. इनके पिता का नाम कृष्णदास एवं माता का नाम दया कुँवर था. जब वे छोटे थे, तब इन्होंने माता-पिता का छत्र गँवाया और वे विरक्त होकर सत्संग करने लगे. भाभी के कटु वचन ने इनको कृष्ण भक्त बना दिया. वे गोपनाथ महादेव में जाकर तप करने लगे. इन्हें कृष्णभक्ति पर भरोसा था और कृष्ण की कृपा पर विश्वास था. इनकी मान्यता के अनुसार इसीके फलस्वरूप ही अपने पुत्र शामलदास का विवाह, पुत्री कुँवरबाई का ` मामेरा ` एवं पिताजी का श्राद्ध हो पाया था.

इनकी कविता संप्रदाय से परे है. इनके पदों में ज्ञान-भक्ति का सुंदर समन्वय है. श्रृंगार से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की ओर इनकी गति रही है.

जीवन में आत्मज्ञान का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं --

ज्यां लगी आत्मतत्व चिन्यो नहीं,त्यां लगी साधना सर्व जूठी

बृहद काव्य दोहन में नरसिंह महेता के कुछ हिन्दी पद मिलते हैं, पर इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है.

वे ऊँच-नीच के भेदभावों में विश्वास नहीं करते थे इसलिए हरिजनों के घर भी भजन करने जाते थे. ` वैष्णव जन तो तेने रे कहिए, जे पीर परायी जाणे रे ` वाला इनका भजन सर्वमान्य है.

हरिस्मरण का महत्व बताते हुए वे कहते हैं --

सास सास सिमरण नहीं कीनो, धमण धमे थाकी सांसडियां ।
जिस रसना हरिनाम न गायो, सो जिम्यां है कासडियां ।।

भालण - सं 1461-1570 वि०

भालण के जीवनकाल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है. क० मा० मुनशी

1. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी- डा० अंबाशंकर नागर पृ. 43.

सं 1482-1556, डी० ब० कृष्णलाल झवेरी सं 1495- 1595 और रामलाल मोदी सं 1461-1545 वि० के बीच इनकी उपस्थिति मानते हैं. [1] इस प्रकार भालण को नरसिंह महेता का समकालीन माना जा सकता है. श्री के० का० शास्त्री भालण की पुस्तक `दशमस्कंध` के व्रजभाषा के पदों पर सूर का असर मानते हुए इन्हें 16 वीं शती का कवि मानते हैं.

भालण रामभक्त मोढ ब्राह्मण थे और पाटण [उ० गु०] के निवासी थे. भालण ने गुजराती में आख्यान काव्यों का आरंभ किया था, इसलिए इन्हें आख्यान काव्य का पिता भी कहते हैं. इन्होंने कादंबरी का भाषांतर भी किया है. इन्होंने नलाख्यान भी लिखा है. शिव-भीलडी संवाद, मृगी आख्यान, ध्रुवाख्यान, दुर्वासाख्यान एवं दशमस्कंध जैसे काव्य ग्रंथों की रचना इन्होंने की है. दशमस्कंध की सबसे प्राचीन हस्तप्रत सं 1755 वि० की है. इसमें व्रजभाषा के प्रभाव के कुछ नमूने दृष्टव्य हैं --

1. मैया मोरे भावे दधि भात	पद 212
2. व्रज को सुख समरत ही श्याम	214
3. कहो मैया कैसे सुख पाऊँ	215
4. अब पढवेको आयो दिन	216
5. सुन मैं सुनी लोक में बात	219
6. कौन तप कीनोरी नंद पुराणी	72

इन पदों में भनिता के रुप में भालण का नाम परंपरा अनुसार आता ही है, जैसे - । भालण प्रभु रघुनाथ बदत है, वा रसकी रही व्रज में बात ।

श्री के० का० शास्त्री भालण को गुजरात में व्रजभाषा का आदिकवि मानते हैं . [2]

---

1. गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन - श्री के० का० शास्त्री.
2. वही, पृ. 88.

तथा

मेरे पत्र के प्रत्युत्तर में इनका पत्र दिनांक 28-2-1981.

रैदास - सं 1538-1583 वि0, सं 1471 वि0 संभावना. रैदास जाति के चमार और रामानंद के शिष्य थे. वे काशी में रहते थे. इनकी साधना उच्च कोटि की थी. गुजरात में वे रोहीदास नाम से पहचाने जाते हैं. [1] गुजरात में इनके पदों ने काफी आदर पाया है. भक्त एवं भगवान की आत्मीयता प्रकट करता हुआ इनका यह पद - ` प्रभुजी तुम चंदन हम पानी ` गुजरात के विद्यालयों में ही नहीं, वरन् गाँव गाँव में गुंजित है.

इनके अलावा इस शती में जैन कवि पृथ्वीचंद ने ` मातृका प्रथमाक्षर ` और अहमदाबाद के सूफी संत हजरत सैयद मुहम्मद ने कुछ स्फुट रचनाएँ की हैं, किंतु इनके संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है.

केशवदास - रचनाकाल सं 1592 वि0

केशवदास सौराष्ट्र स्थित प्रभासपाटण के निवासी थे. वे जाति के कायस्थ थे. इनके पिता का नाम रदेराम एवं माता का नाम तारादे था. इन्होंने ` कृष्णक्रीडा काव्य ` नामक सर्गबद्ध ग्रंथ की रचना की है. इस ग्रंथ के 14 वे और 15 वे सर्गों में व्रज के पद देखने को मिलते हैं. श्री के0 का0 शास्त्री ने इस ग्रंथ का रचनाकाल सं 1592 वि0 माना है. [2] इन्हें संस्कृत का भी विशेष ज्ञान था.

कृष्णदास - उपस्थितिकाल सं 1552-1631 वि0

हरिरायजी कृत ` भावप्रकाश ` से ज्ञात होता है कि कृष्णदास का जन्म अहमदाबाद जिले के चिलोतरा नामक गाँव में हुआ था. वे कुनबी पटेल थे. इनके पिता चिलोतरा गाँव के मुखिया थे. [3] पिता के साथ मनदुःख के कारण ये गृहत्याग करके व्रज गये. बचपन में ही साधु-संतों के सत्संग के कारण इन्हें आध्यात्मिकता की राह पाने में सरलता रही. जहाँ कथा-वार्ता होती वे वहाँ अवश्य

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन- डा0 रामकुमार गुप्त, पृ. 94
2. कवि चरित- पृ. 228.
1. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ- डॉ0 अंबाशंकर नागर, पृ. [illegible]
3. अष्टछाप परिचय-प्रभुदयाल मीतल, पृ. 207.

होते ही. इन्होंने ब्रज में बहुत से पदों की रचना की है.

बैजनाथ -

बैजनाथ चांपानेर के निवासी थे. वे माने हुए संगीतज्ञ थे. गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के दरबार में इनका बड़ा आदर था. वे भक्त कवि भी थे. प्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजूबावरा वही थे. [1] इनकी रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

नरमणि नारायण, तारामणि ध्रुव, तीर्थमणि गंगा, देवमणि शंकर ।
नारीमणि उर्वशी, पुष्पमणि कमल, दास बैजूमणि मूल मुरलीधर ।।

शाहअली मुहम्मद आमधनी - सं 1571 वि० के आसपास

शाहअली मुहम्मद आमधनी पहुँचे हुए सूफी संत थे. इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था, और पिता का नाम इब्राहीम जाबुल्ला था. इनका मज़ार अहमदाबाद-रायखड़ में है. इनका लिखा हुआ दीवान जवाहिरे इसरारूल्लाह के नाम से मुसलमानों में आदरणीय समझा जाता है. 'प्रेम की पीर' इनकी कविता की विशेषता है. इनका तर्जकलाम हिंदी शैरा का सा है. [2] वे अपनी भाषा को 'गुजरी' कहा करते थे.

काजी महमूद दरियायी - सं 1510-1577 वि०

काजी महमूद दरियायी का जन्म सं 1510 वि० में हुआ था. वे वीरपुर [गुजरात] में रहते थे. इनके पिता का नाम शाह चलन्दामी था, जो पहुँचे हुए संत थे. दरियायी मुसाफिरों के वली होने के कारण शाह चलन्दामी समाज में दरियायी नाम से पहचाने जाने लगे. इनके पुत्र मुरीद और काजी महमूद भी दरियायी कहे जाने लगे. इन्होंने समाज को हिंदी में उपदेश दिया. इनकी हिन्दी में कहीं-कहीं गुजराती और अरबी लफ्ज़ भी आ जाते हैं. [3] इनकी रचना का एक

---

1. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ- डॉ० अंबाशंकर नागर, पृ. 3.
2. उर्दू की इबतदाई नश्व व नुमामें सूफियाए इकराम का काम, पृ. 58. मौ. अब्दुलहक.
3. वही, पृ. 58.

उदाहरण द्रष्टव्य है --

पाँचो वक्त नमाज गुजारु,
दायम पढ़ूँ कुरान ।
खावो हलाल, बोलो मुख साँचा,
राखो दुरुस्त ईमान ।[1]

मांडण - सं 1536 वि०
======

श्री के० का० शास्त्री[2] मांडण का समय वि० 16 वीं शती का पूर्वार्ध मानते हैं. वे सिरोही के निवासी थे. इनके पिता का नाम हरि एवं माता का नाम मेघू था. वे जाति के बंधारा थे. वे मदन जोशी के शिष्य थे. इन्होंने ' प्रबोध बत्रीसी ' नामक षटपदी चौपाई का ग्रंथ लिखा है, जिसमें जनमानस को प्रतिबिंबित करनेवाली चारसौ से पाँच सौ तक कहावतों का प्रयोग किया है. इस प्रकार इन्होंने कोष-कार का कार्य भी किया है. अखा के बाद षटपदी का प्रयोग किसी कवि ने नहीं किया. इनके हिंदी पद की एक पंक्ति द्रष्टव्य है --

भजन करो राम का भाई, छांड सब तन की चतुराई ।[3]

हीरादास - सं 1550 - 1635 वि०

संत हीरादास का समय सं 1550 से 1635 वि० तक माना जाता है. वे सूरत के निवासी थे.[4]

इनके पद नीति धर्म संबंधी उपदेशों से भरे पड़े हैं. ऐसा कहा जाता है कि खिन्नी नामक गणिका का इन्होंने उद्धार किया था. इनकी भाषा सधुक्कड़ी

---

1. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन - डॉ० रामकुमार गुप्त, पृ. 100
2. कवि चरित, पृ. 79.
3. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन- डॉ० रामकुमार गुप्त, पृ. 101.
4. वही, पृ. 103.

है. उपदेश एवं भाषा के लिए इनकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

आवागमन मिटत नहीं तेरा अजहु बड भागे ।
प्रीत पुरानी खोज पियारे असली अनुरागे री ।।

समर्थदास सं 1550-1620 वि0
=======

संत समर्थदास का जन्म सं 1550 वि0 में सिद्धपुर में हुआ था. इनका मूल नाम बंकाजी था. वे वणिक थे. संत के रूप में वे ` साँई समर्थ ` नाम से विख्यात थे. बचपन से ही इनमें सत्संग, भक्तिपरायणता एवं ब्रह्म जिज्ञासा की भावना थी. वे सिद्धपुर में यवन हाकिम के यहाँ नौकरी करते थे. हकीम की बेटी इन पर आसक्त थी, उसने बंकाजी के सामने विवाह [illegible] प्रस्ताव रखा, पर ` संसार-सार ` समझने वाले बंकाजी इससे विचलित नहीं हुए. माया में पड़ने के बदले, लोचनदास नामक कबीरपंथी साधु से दीक्षा लेकर इन्होंने गृहत्याग करना उचित समझा और रमते रमते सूरत आ पहुँचे. सिद्ध स्थिति प्राप्त करने पर इनके शिष्यों की संख्या भी बढ़ने लगी. माधवदास भी इनके शिष्य बने.

इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के उपदेश समाविष्ट हैं. इन्होंने विभिन्न रूपकों के माध्यम से जीव को नश्वर संसार की माया में न फँसकर परम तत्व की उपलब्धि की ओर उन्मुख होने का उपदेश दिया है. इनका निर्वाण सं 1620 वि0 में सूरत में हुआ था.

इनकी सधुक्कड़ी भाषा में गुजरी के जावना, खावना, गावना, पतावना आदि क्रिया-रूपों का प्रयोग हुआ है.

इनके पदों की भाषा के कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं --

1. अलख से प्रीत लगाव पियारे, तोहे यहाँ से एक दिन जावना है । [1]
2. बाँध लेना शमशीर ताती, क्रूर कालकी फौज हटावनेकु । [2]

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ0 अंबाशंकर नागर, पृ. 47.
2. वही, पृ. 49.

मीरां - सं 1561- 1603 वि0

मीरां के जन्म समय के बारे में विद्वानों में मतभेद है. डाह्याभाई देरासरी[1] इनका जन्म सं 1573 में चोकडी में मानते हैं जबकि डॉ0 नागर [2] इनका जन्म आधुनिक खोजों के आधार पर श्रावण शुक्ल । शुक्रवार सं 1561 में बताते हैं. मीरां सं 1588 वि0 में द्वारका में आयी और जीवन के अंतिम दिन तक वहाँ ही रहीं. इनका देहावसान सं 1603 में हुआ. मीरां के पिता का नाम रतनसिंह एवं माता का नाम वीर कुँवरी था. इनका विवाह भोजराज से हुआ था. अपने पति के अकाल अवसान ने इनकी कृष्ण भक्ति को और दृढ़ किया. वे साधु संतों के बीच कीर्तनादि किया करती थीं, जो इनके रिश्तेदारों को पसंद नहीं था. इसलिए इन्हें मारने के लिए विष भेजा गया जो कृष्ण कृपा से अमृत बन गया.

गीत गोविंद की टीका, नरसिंह का मायरा, सोरठा पद, राग गोविंद, सत्यभामानुं रूसणुं और कुछ फुटकल पदों की इन्होंने रचना की है. मीरां के पद हिंदी साहित्य की अक्षयनिधि है.

इनकी काव्य प्रवृत्ति को देखते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इन्हें सगुण एवं निर्गुण धारा से न्यूनाधिक प्रभावित माना है. [3]

` जोगी मत जा, मत जा,मत जा, पाय पडँ मैं तोरी ` वाला इनका पद बड़ा ही मशहूर है.

ईसरदास बारोट - जन्म सं 1595

ईसरदास का जन्म मारवाड के भद्रेस नामक गाँव में सं 1595 वि0 में हुआ था. वे बड़े होने पर सौराष्ट्र में रहने लगे. नवानगर के रावल जाम साहब इनकी कवित्व शक्ति पर प्रभावित हुए और इन्हें आश्रय देकर राजकवि बनाना चाहा,

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 5.
2. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, पृ. 50.
3. मीरां स्मृति ग्रंथ, पृ. 64.

पर राजपंडित पीतांबर ने इन्हें सम्मति नहीं दी. इस बात का पता जब ईसर बारोट को चला तब वे रात्रि के समय कटार लेकर पीतांबर के घर गये. उस समय पीतांबर अपनी पत्नी से कह रहे थे कि " राजा ईसर का सम्मान करना चाहते थे, पर मैंने सोचा शब्द-ब्रह्म की ऐसी अप्रतिम शक्ति का सारुक राज्याश्रय प्राप्त करके पाकृत जनका गुणगान करने लगेगा, अतः मैंने सम्मति नहीं दी. " [1] यह बात सुनकर इनका क्रोध शांत हो गया और वे राजपंडित के चरणों में गिर पड़े. ऐसा कहा जाता है कि इसी प्रसंग के आधार पर इन्होंने ` हरिरस ` काव्य लिखा.

डॉ० मेनारिया ने इनकी भाषा को डिंगल कहा है. [2] इन्होंने देवीयाण, छोटा हरिरस, बाललीला एवं अनेक स्फुट पदों की रचना की है.

हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती - सं 1595-1670 वि०
========================

हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती का जन्म सं 1595 वि० में हुआ था. इन्होंने ` खूब तरंग ` नामक एक मसनवी लिखी है.[3] वे श्रेष्ठ मसनवीकार थे. वे अहमदाबाद के निवासी थे. सं 1670 वि० में इनका इन्तकाल हुआ.

नरमियां - सं 1590 वि० में वर्तमान
======

जूनागढ में नरमियां अथवा नरमि नामक कवि हो गये. इन्होंने व्रज में कविता लिखी है. [4] इनकी रचनाएँ उत्तर-हिंद में आदर पा चुकी हैं.

इनके उपरांत जैन कवि पतिखतेलने ` चितोड़ नील गजल, वैष्णव चारण कवि नरहरदास ने ` पौरुष रामायण ` एवं आमोद के कवि नरसासुत गणपति ने ` माधवानल काम कंदला ` की रचना की है.

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन - डॉ० एन० ए० व्यास पृष्ठ 33.
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 115.
3. गुजरातके कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन,डॉ० एन० ए० व्यास, पृ. 34.
4. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो-श्री डाह्याभाई देरासरी,पृ.8

मावदास - सं. 1601-1652 वि0

संत माधवदास का जन्म सं. 1601 वि0 में सूरत में हुआ था. इनके पिता का नाम करवतसिंह और माता का नाम हिरलदेवी था. वे सूर्यवंशी सिसोदिया राजपूत थे. इनके पूर्वज मेवाड के केलवाणा परगना के निवासी थे. बचपन से ही वे परोपकारी एवं उदारचित्त थे. जब वे छोटे थे, तब इनके पिता का देहांत हो गया था. माता इन्हें सदुपदेश दिया करती थी. युवावस्था में वे सजना नामक वणिक युवती से प्रेम कर बैठे, पर उसकी अकाल मौत ने इनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न किया और वे गुरु की खोज में निकल पड़े. संत समर्थदास को इन्होंने अपना गुरु माना. संत समर्थदास इनको ` मस्त माधव ` कहा करते थे.[1]

सिद्धि की उपलब्धि के बाद वे दिल्ली की ओर गये. कहा जाता है कि यहाँ पर इन्होंने बीरबल एवं गंग कवि से भेंट की . यहाँ की रोशनआरा नामक वेश्या को इन्होंने दीक्षा दी. मुलतान में सरदार की पुत्रवधु इन पर मोहित हो गयी, उसे भी ज्ञान-वैराग्य की दीक्षा देकर वे पुनः सूरत आये. कहा जाता है कि प्यारेदास नामक एक वणिक को भी सदमार्ग पर लाने का कार्य इन्होंने किया. दक्षिण गुजरात इनका कार्यक्षेत्र रहा .

इनकी रचनाओं में संसार की क्षणभंगुरता के साथ-साथ रिश्ते-नातों की व्यर्थता द्रष्टव्य है --

तू देख ले आँखला,नींदको छोड़ दे, खोज कर अगमकी राह माहीं ।
मात और तात सब स्वार्थ का संग है, अंत काले किसीका कोई नाहीं ।।[2]

इनके लिखे हुए 500 स्फुट पद, 600 कुंडलियाँ, रेख्ता, झूलना, सवैया आदि उल्लेखनीय हैं .

इनकी रचनाओं में जंजीर,सनम,इश्क, कयामत आदि अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता हैं .

इनका देहावसान सं. 1652 वि0 में सूरत में हुआ.

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 57.
2. वही, पृ. 59.

दादू दयाल - सं. 1601-1660 वि०

दादू पंथियों की यह मान्यता है कि सं. 1601 में अहमदाबाद में साबरमती नदी में बहता हुआ एक बालक, लोदीराम नागर को मिला. आगे चलकर यही बालक दादू दयाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ. [1] दादू पंथी इन्हें जाति का धुनिया मानते हैं. आज भी धुनिया लोग दादू पंथ में पाये जाते हैं. दादू दयाल शांत प्रकृति के ` दयालु ` जीव थे, भक्तजन इन्हें प्रेम से ` दादा ` कहते थे. इन्हीं कारणों से वे दादू दयाल कहे गये . [2] इनका नाम महाबली था. ज्येष्ठ कृष्ण 8, सं. 1660 में इनका देहांत हुआ.

दादू दयाल ने बुद्धन से दीक्षा ली थी. इन्होंने मूर्तिपूजा, तिलक, छापादि बाह्याचारों का जोरदार विरोध किया. प्रेम एवं दया इनके जीवन के महत्वपूर्ण गुण थे.

सुधाकर त्रिवेदी, चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी आदि विद्वानों ने दादू वाणी का संकलन प्रगट करवाया है.

प्रभु विरह का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

अजहुँ न निकसे प्रान कठोर ।
दरसन बिना बहुत दिन बिते सुंदर प्रीतम मोर ।। [3]

इनकी भाषा सधुक्कडी हिंदी है, जिस पर राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है. इन्होंने गुजराती, मराठी, पंजाबी और सिंधी में भी कुछ स्वतंत्र पद लिखे हैं .

प्यारेदास - जन्म सं. 1625 वि०

प्यारेदास का जन्म सं. 1625 वि० में हुआ था. वे जाति के वणिक थे. इनके गुरु का नाम माधवदास था. जब वे काशी में वीरमती नामक वेश्या में

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी - डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 63.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ.9.
3. वही.

आसक्त होकर अपना जीवन नष्ट कर रहे थे, तब माधवदास ने इनको ईश्वर-प्राप्ति का सही रास्ता दिखाया और इन्हें वे काशी से सूरत ले आये. [1]

इनके पद परमात्मा-प्राप्ति के लिए आत्मा की छटपटाहट से भरे हुए हैं .

अखा - सं. 1648-1725 वि0

गुजरात के कबीर अखा का उपस्थितिकाल सं. 1648 से 1725 के बीच माना जाता है. [2] अखा का जन्म अहमदाबाद के निकट स्थित जेतलपुर नामक गाँव में हुआ था. इनके पिता का नाम रहियादास था. वे जाति के वैष्णव सोनार थे. अखा का सारा जीवन बड़ा करुण रहा. बचपन में माता का छत्र इन्होंने खोया, युवावस्था में अपनी दो कर्कशा भार्याओं के कारण दाम्पत्य जीवन नष्ट हुआ, दैव की अवकृपा से संतान सुख भी न मिल पाया, जमना नामक धर्म की बहन की कंठी में गाँठ के पैसे जोड़े फिर भी अप्रामाणिक समझा गया, सरकारी टकसाल में सिक्कों में मिलावट के आरोप से, निर्दोष होने पर भी इनकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाया गया. इन सभी घटनाओंने अखा के मर्म को ऐसा आघात पहुँचाया कि उन्होंने खाड़िया की देसाई पोल की अपनी खड़की के कुए में अपने औजार फेंक दिये और गोकुल में जाकर गोकुलनाथजी से भेंट की . [3] बाद में बनारस में ब्रह्मानंद स्वामी के पास से इन्होंने वेदांत के ग्रंथों का अध्ययन किया. ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् वे अहमदाबाद आये और ज्ञानी कवि के रूप में प्रस्थापित हुए.

अखा ने संतप्रिया, ब्रह्मलीला, जकड़ी, झूलणा, धमार, कुंडलियाँ, एक लक्षरमणी, पद, भजन,साखियाँ, विष्णुपद, अमृतकला , रमैणी आदि का हिंदी में सर्जन किया है.

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डॉ.रामकुमार गुप्त ,पृ.110.
2. अखो एक स्वाध्याय- डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. 34.
3. अक्षयरस सं. आचार्य कुँवरचंद्रप्रकाशसिंह, पृ. 21.

अखा की हिंदी कृतियों में संतप्रिया का विशेष महत्व है. इसमें कुल मिलाकर 119 छंद हैं. इसमें अखाने कबीर की तरह गुरु महिमा के गीत गाये हैं और विभिन्न बाह्याचारों का खंडन किया है. वे कहते हैं -

गुरु गोविंद गोविंद सोई गुरु गुरु गोविंद गनत नहीं न्यारा । [1]

और

माला न फेरूँ टीका न बनाऊँ शरण न जाऊँ मैं कोउ किसी का ।
आपा न मेटूं थापा न थापूं मैं मरदाना हूँ मेरी खुसी का ।। [2]

ब्रह्मलीला नामक ग्रंथ में इन्होंने बताया है कि निर्गुण निरंजन ब्रह्म से ही माया, त्रिगुण, पंचभूत आदि की उत्पत्ति हुई है. इन्हें कवि के रूप में प्रस्थापित करनेवाले हैं इनके पद और भजन . इनके कुछ पदों ने गांधीजी को भी प्रभावित किया था.

वे मुख्यतः वेदांती थे और फक्कड तथा अक्खड स्वभाव के थे. पाखंडों के पर्दाफाश करने के कारण इन्हें लांछन भी सहने पड़े .

इनकी भाषा संत टकसाली सधुक्कड़ी हिंदी है, जिस पर अरबी-फारसी का भी असर है. अखा की रचना मृत्यु का गीत नहीं वरन् जीवन का संदेश है.

सायांझुला - मृत्यु सं. 1700 वि०

सायांझुला का जन्म ईडर के निकटवर्ती लीलछा गाँव में हुआ था और बाद में वे फुवावा गाँव में जाकर बस गये. इनका जन्मकाल अज्ञात है, किन्तु मृत्युकाल सं. 1700 वि० माना जाता है. इनके पिता का नाम स्वामीदास चारण था .

सायांझुला ने नागदमण, रुक्मिणी हरण एवं अंगद विष्टि नामक ग्रंथ लिखे हैं . पालनपुर के हमीरदान का, जिन्होंने नागदमण काव्य को प्रकाशित किया है, मानना है कि इस ग्रंथ का रचनाकाल सं. 1632 वि० है. इसमें कुल

---

1. संतप्रिया सं. डॉ. रमणलाल पाठक, कवित्त-8.
2. वही, कवित्त-84.

130 छंद हैं, जिनकी भाषा साहित्यिक डिंगल है और यह एक पवाडा काव्य है, जिसके आरंभ में इन्होंने कहा है --

विघ्नजा शारद वीनवूं, सादर करो पसाय,
पवाडो पन्नगा सिरे, जदुपति कीनो जाय । [1]

जनसुधार और धर्मप्रचार इनके काव्य का मूल उद्देश्य है.

<u>मुकुंद गुगली</u> - रचनाकाल सं. 1708 वि0

मुकुंद गुगली ने एक पद में अपना परिचय इस प्रकार दिया है -

उदीच्यसे उत्पत्ति, गुगली सबकी हुई,
मुकुंद की जात वो ही मन जान्यो आनंद ,
भाषा पढाई जानो, गुरुगम से पिछान्यो,
आनंद उर में आन्यो, गुरु केशवानंद ।
सत्तरा से अष्टसाल, मालिका मंडी रसाल,
पहिलो ही मेर सोयो कबीर आनंदकंद ,
द्वारिका में ही मुकाम, केशव से जान्यो नाम,
मालिकाकी दीनी हाम जग्यो तब मुकुन्द । [2]

मुकुंद गुगली द्वारिका के निवासी थे. इनके गुरु का नाम केशवानंद था, जिनसे भाषा का अध्ययन करके इन्होंने ` भक्तमाल ` की रचना सं. 1708 वि0 में की थी. ` भक्तमाल ` में कबीरचरित में कबीर के जन्म संबंधी विविध 6 आख्यायिकाओं का निरूपण हुआ है. कबीरचरित में 15 ` कडवा ` हैं. गोरक्ष-चरित में 9 ` कडवा ` हैं. कबीरचरित में हिंदी का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है, जबकि गोरक्ष-चरित में हिंदी का प्रयोग प्रायः कम है. गुजराती और हिंदी दोनों भाषाओं पर इनका प्रभुत्व स्पष्ट दिखाई देता है. मुकुंद का ` भक्तमाल ` अपना ऐतिहासिक मूल्य रखता है चूँकि उसमें भक्तों के जन्म, साहित्य आदि के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध होती है. इन्होंने कुछ पद भी लिखे हैं.

---

1. गुजरात के हिंदी गौरव ग्रंथ- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 99.
2. कविचरित- श्री के0 का0 शास्त्री, पृ. 625.

आनंदघन - सं. 1660-1731 वि०
=======

आनंदघन 17 वीं शती के श्वेतांबर जैन कवि थे. इनका मूल नाम लाभानंद था. इनका उपस्थितिकाल सं. 1660 से 1731 वि० तक माना जाता है. इन्होंने गुजराती में `आनंदघन चौबीसी` नामक ग्रंथ की रचना की है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वे गुजरात में कुछ वर्ष जरूर रहे होंगे.[1] इन्होंने राजस्थान में समाधि ली थी.

आलोचकों की दृष्टि में वे रहस्यवादी मर्मी कवि थे. इन्होंने जैन आगमों का गहरा अध्ययन किया था. इनकी वाणी सांप्रदायिकता से परे है. `आनंदघन चौबीसी` में 24 तीर्थंकरों का स्तवन है. `आनंदघन-बहोतरी` में 108 पद हैं, जिनकी भाषा व्रज है. इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, जीवन की क्षण-भंगुरता एवं प्रेम का उपदेश दिया गया है.

जीवन की क्षणभंगुरता बताते हुए वे कहते हैं कि हे घड़ियाल बजानेवाले, तू घड़ियाल मत बजा, जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक के रूप में हम सिर पर पगड़ी धारण करते ही हैं -

रे घरियारी बाउरे, मत घरिय बजावै,
नर सिर बाँधे पाघरी, तू क्या घरिय बजावै ।[2]

आनंदघन ने अन्य सर्वधर्म समन्वयवादी संतों के स्वरों में स्वर मिलाते हुए राम, रहेमान, कृष्ण, महादेव, पारसनाथ आदि को एक माना है, और कहा है कि मिट्टी के पात्रों की तरह एक ही ब्रह्म को अलग अलग नाम से पहचाना जाता है --

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री,
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी ।
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री,
तैसे खंड कल्पना रोपित, आप अखंड स्वरूपरी ।[3]

---

1. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 33.
2. वही, पृ. 36.
3. वही, पृ. 38.

संगीतात्मकता इनके पदों की प्रधान विशेषता है. इन पदों में स्पष्ट रूप से गुजराती, ब्रज, मारवाडी आदि का प्रभाव देखा जा सकता है.

भगवानदास कायस्थ - सं. 1681-1746 वि0

भगवानदास का जन्म सं. 1681 में सूरत में हुआ था. इनका बचपन का नाम मूलजी भाऊ था. वे बहुत गरीब थे, पर अपनी कुशलता एवं कवित्व शक्ति के माध्यम से महोब्बतखान के दीवान बने. वे कहते हैं -

साहिबका सेवक करे, सेवकका साहीब,
जगतपतिके द्वारमें, ऐसी है तरकीब,
मुफलीस नौकर आपका, दास कवि भगवान,
क्या तकदीर ताजुब है, आज भया दीवान ।[1]

वैष्णव कवि भगवानदास ने संस्कृत, मराठी, फारसी एवं हिंदी का अध्ययन किया था. इन्होंने बहुत से ग्रंथों की रचना की, जिनमें से हिंदी में लिखे श्रीमद भगवत गीता, भागवत का एकादश स्कंध, फूलगीता और सुदामा चरित्र उल्लेखनीय हैं .

वे एक कुशल प्रशासक दीवान थे, अतः कुछ दरबारी इनसे अकारण द्वेष रखते थे. इन दरबारियों ने इनकी हत्या का षड्यंत्र रचा और एक समय जब वे प्राणनाथ के भवन में थे तब ये षड्यंत्रकारी इन पर टूट पड़े. इस असहाय अवस्था में इन्होंने भगवान को आर्त स्वर से पुकारा -

अब मोको राख लियो गोपाल
जैसे सुरपति-कोप आगे राखे सब ब्रीजबाला ।[2]

कहा जाता है कि भगवान स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने षड्यंत्रकारियों का नाश किया और अपनी पादुकाकी स्थापना करने को कहा. आज भी सूरत में अश्विनीकुमार घाट जाते मार्ग में ये पादुकाएँ प्रस्थापित हैं, लोग इनका दर्शन

1. कवि चरित भाग-1,2 के0 का0 शास्त्री, पृ. 466.
2. वही, पृ. 467.

करते हैं .

सं. 1746 की दीवाली के दिन इनका देहावसान हुआ.

ज्ञानानंद - सत्रहवीं शती में वर्तमान

ज्ञानानंद जैन कवि थे. इनके जन्म-मरण एवं निवास संबंध निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है. विद्वानों के मतानुसार वे सत्रहवीं शती में विद्यमान थे.[1] इनके पदों की वाणी के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वे गुजराती होंगे या गुजरात में कुछ वर्ष रहे होंगे .

वे जैन कवि हैं, फिर भी इनकी रचनाएँ सांप्रदायिकता से परे हैं. इनकी वाणी में राम-रहीम, अल्लाह-ब्रह्मा, विष्णु-महेश, दशद्वार अलखनिरंजन, अजर - अमर आदि शब्द इन्हें संत परंपरा की कड़ी के रूप में प्रस्थापित करने में पर्याप्त हैं .

ज्ञानमार्गी संतों की तरह वे कहते हैं --

मंदिर एक बनाया हमने, मंदिर एक बनाया रे,
जिस मंदिर के देश दरवाजे, एक बुंदकी माया रे ।[2]

यशोविजय -

यशोविजय का जन्म पाटण के निकटस्थित कानहेड़ नामक गाँव में हुआ था. इनके पिता का नाम नारायण और माता का नाम सौभाग्यवती था. ये आनंदघन के समकालीन माने जाते हैं . डॉ. एन० ए० व्यास के अनुसार इन्होंने व्याकरण और न्याय विशारद की उपाधि प्राप्त की थी.[3] वे जीवन के अंतिम दिनों में गुजरात में रहे थे. इनकी विद्वत्ता के कारण इनको गुजरात का द्वितीय हेमचन्द्राचार्य माना जाता है. इन्होंने 30 से अधिक ग्रंथों की रचना की है.

ईश्वर दर्शन पर अपने मन की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, डॉ. एन० ए० व्यास, पृ. 38.
2. वही, पृ. 257.
3. वही, पृ. 38.

आज आनंद भयो, प्रभुको दर्शन लह्यो,
रोम रोम शीतल भयो, प्रभु चित्त आयो है .[1]

विनय विजय - सत्रहवीं शती में वर्तमान

विनय विजय जैन कवि थे. इनके पिता का नाम तेजपाल एवं माता का नाम राजश्री था. ये प्रकांड पंडित थे. इन्होंने `शांत सुधा रस.` नामक संस्कृत ग्रंथ का प्रणयन किया है. विद्वानों के मतानुसार ये 17 वीं शती में विद्यमान थे. इनकी रचनाओं में संस्कृत, व्रज और गुजराती के शब्द-प्रयोग मिलते हैं .

मानव जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए ये कहते हैं --

मेरी मेरी करत है बाउरे, फीरे जीव अकुलाय ।
पलक एक में बहुरि न देखे, जल बुंदको न्याय ।।[2]

नरहरि - उपस्थितिकाल सं 1672-1700 वि०

डॉ. सुरेश जोशी ने नरहरि को बायला का निवासी और जाति का पाटीदार माना है.[3] वे इनका अस्तित्व सं. 1672 से 1700 वि० के आस-पास मानते हैं .

महात्म्यमराम ने अखा, नरहरि, बूटा और गोपालदास को ब्रह्मानंद का शिष्य माना है -

अखा, नरहर, बूटा गोपाला,
एच्यों बह्मानंद के बाला ।[4]

ज्ञानगीता, हरिलीलामृत, प्रबोध मंजरी, मास, गोपी उद्धव संवाद, भक्ति मंजरी, कक्का, संतना लक्षण आदि ग्रंथों में नरहरि ने भक्ति ज्ञान और

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन-डॉ. एन० ए० व्यास, पृ. 261

2. वही, पृ. 258.

3. नरहरिनी ज्ञानगीतानी समीक्षित वाचना, पृ. 249-251.

4. महात्म्य ज्ञान प्रकाश, सं. 1996, पृ. 8.

वैराग्य का निरूपण किया है. ज्ञान गीता में इन्होंने आत्मतत्व को जन्म-मृत्यु से परे बताया है. वे कहते हैं -

" एक पूरण आतमा, भाई अवर बीजु न कोय "

इन्होंने कुछ हिंदी पद भी लिखे हैं, जो वडोदरा के प्राच्य विद्यामंदिर की हस्तप्रति नं. 5497 `क` में मौजूद हैं.

गोपालदास - उपस्थितिकाल सं. 1705 वि0

गोपालदास का उपस्थितिकाल सं. 1705 वि0 माना जाता है. इनके पिता का नाम क्षेमदास या खीमजीदास नारणदास था.[1] वे नांदोल के वैश्य थे. वैसे तो ब्रह्मानंद को इनका गुरु माना जाता है, पर इन्होंने अपनी रचना ज्ञानप्रकाश -गोपालगीता में सोमराज को अपना गुरु माना है -

" मैं मतवाला रामका,
अजर प्याला प्रेमका मुज असर आया रे,
मस्त भया गोपालिया सोमराज पीवडाव्या रे । "

गोपालदास ने गोपालगीता में गुरु-शिष्य संवाद के द्वारा जीव-शिव की एकता, मनोनाश से मोक्ष एवं गुरु की अनिवार्यता का निर्देश किया है -

" गुरु बिन ज्ञान न पामे प्राणी, ज्ञान विना नहीं मुक्ति । "

प्राणनाथ - सं. 1675-1751 वि0

प्रणामी संप्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ का जन्म सं. 1675 वि0 में भादों कृष्ण 14, रविवार के दिन जामनगर में हुआ था. जैसा कि सांप्रदायिक ग्रंथों के आधार पर ज्ञात होता है -

संवत सोल सौ पंचोतेर भादो वदी चौदस नाम ।
पोहरे दिन बार रवि, प्रगटे धनी श्रीधाम ।।[2]

---

1. नरहरिनी ज्ञानगीतानी समीक्षित वाचना, डॉ. सुरेश जोशी, पृ. 367.
2. प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य, डॉ.नरेश पंड्या, पृ. 6,7.

डॉ. रामकुमार वर्मा [1] एवं डॉ. व्यास ने [2] इनके पिता का नाम खेमजी क्षेमजी बताया है, जबकि डॉ. नागर [3] एवं डॉ. नरेश पंडया इनके पिता का नाम केशव क्षत्रिय लोहाणा मानते हैं. इनकी माता का नाम धनबाई था. इनका बचपन का नाम महेराज था. [4] तेजबाई तथा फूलबाई नामक इनकी दो पत्नियाँ थीं. डॉ. बड़थ्वाल [5], डॉ. रामकुमार वर्मा [6] आदि ने इन्द्रामति को प्राणनाथ की पत्नी माना है , पर वास्तव में ` इन्द्रामति ` साधनात्मक प्रवृत्ति की एक विकासात्मक भूमिका मात्र है .

सं. 1751 वि० श्रावण कृष्ण 4, प्रातःकाल 4 बजे इनका धामगमन हुआ.

प्रणामी संप्रदाय के स्थापक राधा वल्लभी संप्रदायवाले देवचंद को इन्होंने अपना गुरु माना. यह संप्रदाय भारतव्यापी है. बुंदेलखंड, नेपाल, आसाम,उडीसा, मारवाड, काठमांडू, दार्जिलिंग, गोहाटी, काशी, इलाहाबाद आदि इसके प्रधान धाम हैं. इन्होंने सर्वधर्म समन्वयवादी भूमिका पर अपने पंथ का प्रचार किया है.

बुंदेलखण्ड के राजा छत्रसाल एवं नेपाल के राजा रामबहादुर प्राणनाथ के शिष्य थे. प्राणनाथ ने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की हैं - रास, प्रकाश , षड्ऋतु कलश [गुजराती],प्रकाश, कलश [हिन्दी],परिक्रमा, सागर, श्रृंगार, कयामतनामा आदि. इन सबको एक ग्रंथ में संग्रहीत करके इसे ` कुलजम स्वरुप ` नाम दिया गया है.

---

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 278.
2. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, पृ. 40.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, पृ. 115.
4. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो- डाह्याभाई देरासरी,पृ.12.
5. हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ. 133.
6. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 279.

वैष्णवजन की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं --

हो भाई मेरे वैष्णव कहिए वाको निरमल जाकी आतम ।[1]

प्रियादास - सं. 1730-1800 वि०

प्रियादास सूरत के निकटवर्ती राजपुरा के गौड़ ब्राह्मण थे. इन्होंने नाभादास के भक्तमाल की टीका लिखी है. इसके अलावा अनन्य मोहिनी, चाहवेली, भक्त सुमरनी और रसिक मोहिनी आदि ग्रंथों की भी रचना की है.[2]

शामल भट्ट

शामल भट्ट श्रीगौड़ ब्राह्मण थे. इनके पिता का नाम वीरेश्वर एवं माता का नाम आनंदीबाई था. इन्होंने अपने गुरु नाना भट्ट से फारसी, संस्कृत और व्रज भाषा का अध्ययन किया था.

शामल भट्ट ने नंद बत्रीसी, अंगद विष्टि, रखीदास चरित्र जैसे कथा काव्य लिखे हैं. वे रखीदास पटेल के आश्रित कवि थे. इन्होंने 24 ग्रंथ लिखे हैं.

अंगद विष्टि में राम और अंगद के बीच हिंदी में कथोपकथन उत्कृष्ट कोटि का है.[3] रावण और अंगद के बीच भी इसी प्रकार का कथोपकथन है.

विश्वनाथ जानी - रचनाकाल सं. 1708 वि०

विश्वनाथ जानी रचित मोसाला चरित्र, सगालशा चरित्र, प्रेमपचीसी, चातुरी चालीसी आदि ग्रंथ गुजराती में उपलब्ध हैं. सगालशा चरित्र में रचनाकाल सं. 1708 वि० बताया गया है.[4] उद्धव संदेशवाला ' प्रेम पचीसी ' का 18 वाँ पद व्रज भाषा में हैं.

---

1. प्राणनाथ : संप्रदाय एवं साहित्य, डॉ. नरेश पंड्या, पृ. 238.
2. अखिल भारतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. महोब्बतसिंह चौहान, पृ. 233.
3. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, डा. एन० ए० व्यास, पृ. 47.
4. सत्तरमा शतकनां प्राचीन गुर्जर काव्य-डा. भोगीलाल सांडेसरा, पृ. 31.

शुजाउद्दीन नूरी

शुजाउदीन नूरी अकबर के समकालीन थे. गोलकुंडा राज्य के सुलतान अबुल हसन कुतुबशाह के प्रथम वजीर सैयद मुजफ्फर थे. और दूसरे वजीर मदन पंडित थे, इनमें से किसी एक के पुत्र को नूरी पढ़ाया करते थे. इन्होंने कुछ शेर भी लिखे हैं. [1]

मोहम्मद अमीन - उपस्थितिकाल सं. 1680 वि०

मोहम्मद अमीन का उपस्थितिकाल सं. 1680 वि० माना जाता है. वे श्रेष्ठ मसनवीकार थे. ` युसुफ जुलेखा ` नामक महत्वपूर्ण रचना इन्होंने लिखी है.[2] इनकी भाषा ` गूजरी ` है.

सैयद शाह हाशिम - मृत्यु सं. 1705 वि०

सैयदशाह हाशिम सूफी संत थे. ये अहमदाबाद के निवासी थे. इनकी मृत्यु सं. 1705 वि० में हुई.

पुहकर - आविर्भाव काल सं. 1675 वि०

डॉ. रामकुमार वर्मा ने पुहकर का आविर्भाव काल सं 1675 वि० में माना है.[3] इनके पिता का नाम मोहनदास था. वे जाति के कायस्थ थे. मिश्रबंधु [4] और डाह्याभाई देरासरी ने [5] इन्हें सोमनाथ [गुजरात] का निवासी माना है. और कहा है कि सं. 1681 वि० में किसी कारण से इन्हें आगरा में कैद में रखा गया था. कारागार में इन्होंने ` रस रतन ` नामक व्रज और प्राकृत मिश्रित प्रेमाख्यान शैली के ग्रंथ की रचना की थी. इस ग्रंथ में रेमावती एवं सूरकुमार की प्रेमकथा वर्णित है. प्रेमाख्यान के रूप में इस ग्रंथ का अपना महत्व-

---

1. गुजरात के कवियोंकी हिंदी काव्य साहित्य को देन, डा.एन.ए. व्यास, पृ. 49.
2. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डा.रामकुमार गुप्त, पृ. 138.
3. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 331.
4. मिश्रबंधु विनोद भाग -2, द्वितीय संस्करण पृ. 407.
5. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 9.

पूर्ण स्थान है. ` नखशिख ` नामक एक और ग्रंथ की रचना भी इन्होंने की है.[1] उदाहरण -

> पुहकर कहै जित देखिए बिराजै तित,
> परम विचित्र चारु चित्र मिलि जाति है । [2]

वालम चमार - 17 वीं शती का मध्य भाग
========

वालम चमार उत्तर गुजरात के निवासी थे. वे प्राणियों की खाल उतारने का पेशा करते थे. वे संत भागवदास के उपदेश से वैरागी बने और प्रभु-भक्ति में लीन रहने लगे. [3] ऐसा बताया जाता है कि इन्होंने हिंदी में कुछ स्फुट पदों की रचना की है .

संत मयूखदास - 17 वीं शती का उत्तरार्ध
========

संत मयूखदास बुहरानपुर के निवासी थे. बचपन से ही संत-समागम ने इन्हें वैराग्य की ओर आकर्षित किया था. वे भ्रमण करते हुए सदुपदेश दिया करते थे. वे गुजरात में भी उपदेश देने आये थे. इन्होंने हिंदी में स्फुट पदों की रचना की है. [4]

मोभाराम और देवी तुलजा - 17 वीं शती का उत्तरार्ध
===================

मोभाराम और देवी तुलजा ने कुछ पद संयुक्त नाम से लिखे हैं. देवी तुलजा धोबी की पुत्री थी. ऐसा कहा जाता है कि एक दिन कपड़े धोते धोते मोभाराम रचित एक दोहा उसे प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा हुआ था कि

> ` कनक कटारी और कामिनी, करे कलेजा दाग `

---

1. मिश्रबंधु विनोद, पृ. 407.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, श्री डाह्याभाई देरासरी, पृ. 10.
3. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डा. रामकुमार गुप्त, पृ. 143.
4. वही, पृ. 144.

इसके उत्तर में देवी तुलजा ने लिखा कि

` नारी न होत जगत में, जन्म किसके घर लेव `

इस उत्तर को पढ़कर मोभाराम उसकी विद्वत्ता पर खुश हुए और उसे अपनी शिष्या बनाया । [1]

धोन- 17 वीं शती का उत्तरार्ध
====

धोन ने व्रज में स्फुट रचनाएँ की हैं. उत्तर भारत में इनकी रचनाएँ प्रचलित हैं . [2]

वल्लभ मेवाडो
=========

वल्लभ मेवाडा शाक्त संप्रदाय से संबंधित थे. इन्होंने शक्ति के ` गरबे ` लिखे हैं . अकाल, वृद्ध विवाह, बाल विवाह जैसे विषयों पर ` गरबे ` लिखकर इन्होंने समाज सुधार का महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

इनके अतिरिक्त इस शती में कुछ ऐसे भी कवि हैं, जिनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है. इनमें से गिरिधर नागर, कृष्णदास जैन, जयतनय, पुंजा ऋषि, दयाशील, गुण विजय और भीखजन के नाम उल्लेखनीय हैं . इनकी रचनाएँ क्रमशः स्फुट पद, दुर्जनशाल बावनी, स्थूलभद्र मोहनबेली, आराम सोमचरित्र, चौढालिया, ऋषिदत्त चौपाई एवं सहस्त्र ढालिया,तथा भीखजन बावनी हैं.

शिवानंद -उपस्थितिकाल सं. 1700 वि0
=======

शिवानंद सूरत के निवासी थे. वे वड़नगरा ब्राह्मण थे. इनका कुल विद्वानों का कुल माना जाता था. नर्मद की पत्नी डाहीगवरी का जन्म भी इसी कुल में हुआ था. शिवानंद शिवभक्त थे. इन्होंने शिवपूजन की महिमा का

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डॉ. रामकुमार गुप्त. पृ. 144.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, श्री डाह्याभाई देरासरी पृ. 8.

वर्णन करनेवाले कई पद गुजराती, हिंदी एवं मराठी में लिखे हैं, जो आज भी शिव मंदिरों में गाये जाते हैं.[1] वे भगवानकी कथा करके समाज को भगवद भक्ति के प्रति उन्मुख करते थे.

मुकुन्ददास - सं. 1705 वि. - 1775 वि.

मुकुन्ददास का जन्म सं. 1705 वि. में हुआ था इनके पिता का नाम राघव जी और माता का नाम कुंवरबाई था. अधिकांश लोग इन्हें भावसार जाति के मानते हैं. इन्होंने स्वामी प्राणनाथ से दीक्षा ग्रहण करके `नवरंग` [परब्रह्म] से संबंध जोड़ा था. स्वामी प्राणनाथ के पश्चात वे प्रणामी संप्रदाय के आधार स्तंभ बने. इन्होंने सूरत से उदयपुर जाकर राजस्थान में प्रणामी धर्म का प्रचार किया. इन्होंने उदयपुर में प्रणामी मंदिर भी बनवाया है.

आध्यात्मिक विषय पर इनके लिखे बहुत से ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें से `नवरंग सागर` नामक ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय है.[2] इनकी भाषा में खड़ी बोली, गुजराती और व्रज का समन्वय देखने को मिलता है. इनका धाम-वास सं. 1775 वि० में माघ कृष्ण 10 को हुआ.

लालदास - सं 1710- 1800 वि०

लालदास का जन्म वाडाशिनोर तालुका के वीरपुर नामक गाँव में हुआ था. वे जाति के छीपा भावसार थे. इन्होंने अखा को अपना गुरु माना. अखा की तरह इनकी रचनाओं में गुरु-गोविंद की एकता, ब्रह्म निरूपण, माया निरूपण, जगत निरूपण, गुरु भक्ति आदि का वर्णन है. इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिंदी है. इन्होंने पद, साखियाँ और रवेणी के माध्यम से अपने मनोभावों को अभिव्यक्त किया है. इनकी एक साखी द्रष्टव्य है --

गये को सोचे नहीं, आवन की नहीं आश ।
सो जन केवल राम का, एम कहे `लालदास` ।।[3]

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, श्री डाह्याभाई देरासरी, पृ. 10.
2. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन-डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. 137.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी-डा० अंबाशंकर नागर, पृ. 127.

Smt. HANSA MEHTA LIBRARY ... BARODA
51

शम्सवली उल्लास - सं. 1724-1800 वि0

शम्सवली उल्लास उर्दू के आदि कवि माने जाते हैं. कुछ आलोचक इन्हें औरंगाबाद के निवासी मानते हैं. डार साहब इन्हें गुजरात के निवासी मानते हैं.[1] इनकी मृत्यु सं. 1800 वि0 में अहमदाबाद में हुई. इनके काव्य में गुजराती के देशज शब्द मिल जाते हैं.

कवीश्वर देवरामजी-उपस्थितिकाल 1725 वि0

कवीश्वर देवरामजी मालवा के प्रतापगढ़ के निवासी थे और जाति के विसनगरा ब्राह्मण थे. राज्य की ओर से इन्हें कवीश्वर की उपाधि से सम्मानित किया गया था. इन्होंने हिंदी में फुटकल रचनाएँ लिखी हैं .[2]

लक्ष्मीरामजी -

लक्ष्मीरामजी कवीश्वर देवरामजी के पुत्र थे. वे चित्रकार भी थे, जिससे इनके वर्णित भावों में सहज रूप से चित्रात्मकता विद्यमान रहती है. इन्होंने हिंदी में फुटकल रचनाएं की हैं.[3]

मूलदास - सं. 1731-1835 वि0

मूलदास का जन्म सं. 1731 वि0 में कार्तिक शुक्ल एकादशी, सोमवार को हुआ था. वे सौराष्ट्र के आमोदरा गाँव के निवासी थे. इनके पिता का नाम कृष्णजी और माता का नाम गंगाबाई था. वे जाति के लोहार थे.

ऐसी किंवदंती है कि एक बार दावानल में चीटियों को छटपटाते देखकर वे करुणा द्रवित हो उठे और लालगिरि महाराज से दीक्षा ग्रहण करके परमात्मा-प्राप्ति में लग गये. भक्तजन इन्हें `सौराष्ट्र के जीवन्मुक्त महात्मा`

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन-डा. एन.ए.व्यास, पृ. 48.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो-डाह्याभाई देरासरी, पृ. 13.
3. वही.

के रूप में मानते थे. वे सिद्ध योगी थे और मिट्टी को लड्डू में परिवर्तित करना, मृत पशुओं को जीवित करना, पानी पर चद्दर डालकर उस पर बैठकर दूसरे किनारे पर जाना आदि चमत्कार दिखाकर भक्तजनों को परमात्मा-भक्ति के प्रति उन्मुख किया करते थे.

योगी होने पर भी वे एक ओर सौराष्ट्र में भ्रमण करते हुए, लोगों को सड़ी रूढ़ियों का त्याग करने, पीड़ितों को मदद करने और विधवाओं की सहायता करने जैसे समाज-सुधार के कार्य करते थे, तो दूसरी ओर भक्ति, सदाचरण, प्रेम, करूणा, सद्भाव आदि का उपदेश भी दिया करते थे. गुजराती के विख्यात कवि कलापी ने इनकी सेवा की सराहना करते हुए एक काव्य की रचना की है. इन्होंने भगवद गीता, गुरूगीता, नारद गीता, ब्रह्म गीता, चौबीस दत्तगुरु लक्ष ग्रंथ तथा कुछ फुटकल पदों की रचना की है. इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिंदी है.

ब्रह्मानुभूति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

मूलदास कहे मन ब्रह्म भयो है ।
अब जुग में नहीं आवण को ।। [1]

आत्मा की अमरता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

कला बढत अरु घटत, चंद्र एक रूप सदाई ।
त्यूं उत्पत्ति तन नाश, आत्मा अखंड सदाई ।। [2]

इन्होंने सं. 1835 में चैत शुक्ल 8 को अमरेली में जीवित समाधि ली थी .

जीवणदास - सं. 1752-1840 वि0

जीवणदास 'ब्रह्मज्ञानी' अखा प्रणालिका के संत पुरूष थे, जिनके गुरु लालदास थे. वे लुणावाड़ा के निकट स्थित शिमलिया गाँव के ठीक सामने

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 190.
2. वही, पृ. 184.

मही नदी के किनारे पर आये हुए खानपुर गाँव के निवासी थे. वे सं. 1752 से 1840 वि० तक विद्यमान रहे. अपने गुरु लालदास की अनन्यता सिद्ध करते हुए वे कहते हैं -

देश देशान्तर में फर्या जोया संत सुजाण,
कहे जीवन जोया खरा पण सद्गुरु लाल प्रमाण । [1]

अकल रमण साखी 97

जीवणदास ने अकल रमण, साखी, जीवन रमण, भजनाख्याल, जीवन गीता, कक्को बाराखडी, मही माहात्म्य, चातुरी, धोल, आनंदलीला, हरिनो विवाह और कुछ फुटकल पदों की रचना की है.

`जीवन रमण` नामक रचना में तत्वज्ञान, धनुर्विद्या, अमरमंत्र, भैरव गुफा और त्रिकुटि महल जैसी यौगिक प्रक्रियाओं का सुंदर वर्णन है -

गुरुजी ! तत्वज्ञान ते कुनकु कहीए : धनुर्विद्या कैसे कहीए ?
अमरमंत्र ते कुन कहावे, भैरवगुफा मन कैसे कहावे ? 41
सुन बच्चा ! तत्वज्ञान ते आतमविधि : धनुर्विद्या ते शब्दे सिद्धि,
अमरमंत्र ते सबसे न्यारा, भैवरगुफा ज्यां नाद उच्चारा । 42

`अकल रमण` में ज्ञानमार्ग का महत्व बताते हुए वे कहते हैं --

संसार सागर तरनकु लीजे ज्ञानको नाव,
कहे जीवन ते पर रही, सहेजे अमरपर जांव । 44

फुटकल पदों में भी इन्होंने ज्ञानमार्ग का महत्व इस प्रकार समझाया है -

उड मन पंखी ! गगन घर तेरा । [2]

प्रेमलक्षणा भक्ति की भी एक पंक्ति देख लें -

पियु हमारो परदेशी रे कहावे : प्रेमसखीनो तेडो आवे । [3]

---

1. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा - डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ. 117.
2. वही, पृ. 156.
3. वही, पृ. 156.

इस प्रकार जीवणदास ` ब्रह्म ज्ञानी ` ज्ञानमार्गी संत परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं .

गंजन
====

गंजन गुजराती गौड़ ब्राह्मण थे. इनके पिता का नाम मुरलीधर था. इनके पूर्वज गुजरात से काशी जाकर बस गये थे. मुहम्मदशाह बादशाह के प्रधानमंत्री एतमादुदौला, कमरुदीनखाँ के आश्रित थे. गंजन ने सं. 1786 वि० में ` कमरुदीनखाँ हुलास ` नामक ग्रंथ की रचना की थी, जिसमें इनका यश वर्णित है और भावभेद एवं रसभेद की चर्चा भी की गई है. इसमें षड्ऋतुओं का सुन्दर वर्णन भी है. इनकी रचना से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

नवल नवाल मनि कमरुदीखान सुनि,
अपने बलन करैं ऐरावत रद हैं ।
गंजन सुकवि कहै, चलत डुलत मही,
सुंडन सों अलका की करत गरद है । [1]

भाण साहेब - सं. 1754-1811 वि०
========

भाण साहेब का जन्म सं. 1754 माघ शुक्ल 15, मंगलवार के दिन हुआ था. इनके पिता का नाम कल्याणजी एवं माता का नाम अंबाबाई था. इनकी पत्नी का नाम भानबाई और पुत्र का नाम खीम साहेब था. पहले वे किनखिलोड़ गाँव में रहते थे, किंतु अपने बड़े भाई कानजीभाई की मृत्यु के बाद वे शेरखी में आकर रहने लगे. वे कबीरपंथी संत थे. वे लगभग 40 शिष्यों की भाण-फौज के साथ देशाटन किया करते थे. ` आँबो छट्टो ` नामक गोपालक को इनका गुरु माना जाता है.

भाण साहेब ने रवि साहेब को अपना ही स्वरूप माना है और शेरखीकी प्रजा को भी यही आज्ञा देकर वे सं. 1811 वि० में कमीजड़ा गाँव में समाधिस्थ हुए । [2]

---

1. मिश्रबंधु विनोद भाग-2, आ. 2- मिश्रबंधु पृ. 606.
2. रविभाण संप्रदाय नी वाणी 2 - सं. मंछाराम मोती, पृ. 6.

इनके पदों में कबीर की तरह मस्ती और यौगिक प्रक्रियाओं का वर्णन मिलता है.

खोजीराम -
======

खोजीराम वाराही में मुखिया थे. कहा जाता है कि भाण साहेब के उपदेशों ने इनको भक्तिमार्ग की ओर उन्मुख किया. [1]

राघो भगत -
========

राघो भगत भाण साहेब के शिष्य थे. पूर्वाश्रम में वे लुटेरे थे, पर भाण साहेब के सत्संग से वे भगवद् भक्त बने . [2] इनकी रचनाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है.

कवीश्वर केवलराम - सं. 1756 वि0 1836 वि0
============

कवीश्वर केवलराम का जन्म सं. 1756 वि0 में हुआ था . वे विसनगरा नागर थे. इनके पिता का नाम केशवराम था. इन्होंने संस्कृत एवं व्रज भाषा का अध्ययन किया था. दिल्ली के बादशाह ने मोमीनखान को अहमदाबाद भेजा. दामाजी गायकवाड की मदद से उसने अहमदाबाद पर अधिकार जमाया और नवाब बन गया. केवलराम ने इसी नवाब कुल का वर्णन अपने ऐतिहासिक काव्य ` बाबी विलास ` में किया है.

केवलराम अहमदाबाद में गोमतीपुर के समीप आये हुए राजपुर में तुलसी की पोल में रहते थे --

अहमदमढमें राजपुर तुलसीकी यह पोल ।
केशवसुत केवल बसै, नागर विप्र अमोल ।। [3]

लुणावाडा के राजा ने भी इनको आश्रय दिया था. इन्होंने लुणावाडा नरेश की उदारता एवं वीरता का वर्णन किया है. राजा ने उनको कवीश्वर की

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन- डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ.205.
2. वही, पृ. 206.
3. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो-डाह्याभाई देरासरी, पृ.21.

उपाधि प्रदान की थी .

नरसिंहदास

नरसिंहदास जूनागढ के नवाब के आश्रित कवि थे.[1] वे अहमदाबाद के निवासी थे. इन्होंने केवलराम की तरह बाबी वंश के नवाबों की प्रशस्ति में 'बाबी वंश प्रशस्ति' नामक ग्रंथ ओज गुण युक्त भाषा में लिखा है.

कवीश्वर आदितरामजी

कवीश्वर केवलराम के अवसान के पश्चात् इनके कनिष्ट पुत्र आदितराम ने भी काव्य सर्जन किया. बचपन में वे घर से रुठकर निकल पड़े और वड़ोदरा में राजकुँवर मानाजी गायकवाड के संपर्क में आये . मानाजी गायकवाड ने इनको आश्रय दिया और इनकी काव्य शक्ति पर खुश होकर इन्हें एक गाँव और अहमदाबाद के खाडिया में पाँच-छह घर भेट दिये ।[2]

नाथभवान [अनुभवानंद] - सं. 1737-1856 वि० तक विद्यमान

नाथभवान सौराष्ट्र के वडनगरा नागर थे और शक्ति के उपासक थे. इन्होंने शक्ति के विभिन्न रूपों को लेकर गरबों का सुंदर प्रणयन किया है. 'विष्णुपद' नामक इनकी रचना में कुछ पद हंदी के हैं. वे शक्ति के उपासक ही नहीं, अद्वैतवादी भी हैं.

वे रज्जु-सर्प के दृष्टांत द्वारा माया का निरूपण करते हुए कहते हैं -

उपजत बिनसत सो सब माया, रज्जू के ऊपर साप ऐसो ।[3]

और --

माया बड़ी रे आई अचानक नजरोभास ।
झरमर झरमर बरसन लागी ढांक्ये चिद आकाश ।
नामरूप सब बुंद परतहि जगत भयो है प्रकाश ।[4]

---

1. अखिल भारतीय हिंदी साहित्य का इतिहास,डॉ.महोब्बतसिंह चौहान,पृ.337.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो,डाह्याभाई देरासरी,पृ.23.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी-डॉ. अंबाशंकर नागर,पृ. 9.
4. वही, पृ. 10.

उपर्युक्त पंक्तिओं में वर्षा के सांग रूपक के द्वारा माया का प्रभाव बताया गया है.

ब्रह्म के विराट स्वरूप का निरूपण करते हुए वे अद्भुत रस से पूर्ण पद में कहते हैं --

एकी समे ब्रह्मांड तेरा सीस, भूषन तेरे पाँच पचीस ।
चंद्र-सूर्य दोऊ तेरे नेन, सारदा सोई है तेरे बेन ।
तेरे उर में सागर सात, सप्त पातार लौं चरन विख्यात । [1]

इस प्रकार नाथभवान कबीर-अखा की परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है .

जगजीवन
======

जगजीवन प्रीतम के पुरोगामी थे. वे चरोतर के निवासी थे. इन्होंने ज्ञानगीता, नरबोध आदि ग्रंथों की रचना की है. [2]

प्रीतमदास - सं. 1780-1854 वि0
======

प्रीतमदास का जन्म खेड़ा जिले के बावला नामक गाँव में सं. 1780 वि0 में हुआ था. सं. 1854 वि0 वैशाख कृष्ण 12 के दिन इनका देहावसान हुआ था. इनके पिता का नाम प्रतापसिंह एवं माता का नाम जेकुँवरबा था. वे चारण जाति के थे. इनमें बचपन से ही त्याग और वैराग्य की भावना विद्यमान थी. रामानंद संप्रदाय के ` बापु ` इनके गुरु थे. [3] इनके अनुयायिओं ने इन्हें जन्मांध एवं बाल ब्रह्मचारी माना है.

इन्होंने गुरु महिमा भाग-2, भक्त नामावली, ब्रह्मलीला, साखी ग्रंथ, विनय-दीनता, फुटकल पद आदि ग्रंथों की रचना हिंदी में की है. इनके

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 23.
2. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डा. रामकुमार गुप्त, पृ. 206.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 198.

पद अनन्य भक्ति भाव से भरे हैं. इनके पदों की मधुरता एवं लालित्य के संबंध में गुजरात में यह कहा जाता है कि ` गरबी तो दयाराम की और पद तो प्रीतम के. ` वे 18 वीं शती के भूषण थे. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और शृंगार इनके पदों का विषय रहा है.

इनके साखी ग्रंथको कबीर की तरह 24 अंगों में विभाजित किया गया है. ` गुरु महिमा को अंग ` में गुरु का महत्व बताते हुए वे कहते हैं --

गुरु गोविंद ते अधिक हैं, शुद्ध चित्ते करि जोय ।
कहे ` प्रीतम ` करुणा करे, आवागमन न होय ।। [1]

` संत महात्म्य अंग ` में संतों के स्वभाव का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

संत दीसासें होत है, स्वांगे संत न होय ।
कहे प्रीतम सोनामुखी, कुंदन कह न कोय ।। [2]

इस प्रकार प्रतीमदास हिन्दी संत काव्य की अमूल्य निधि हैं.

लखधर चारण - उपस्थितिकाल सं. 1860 वि०

लखधर चारण भुज के महाराव लेंगार के राजाश्रित कवि थे. इन्होंने लेंगार की प्रशस्ति में ` लेंगार चरित्र ` की रचना की है. [3]

गोपाल जगदेव - उपस्थितिकाल सं. 1880 वि०

गोपाल जगदेव लखधर के समकालीन थे. वे भुज के महाराव लेंगार के आश्रित कवि थे. इन्होंने काव्य प्रभाकर, रसाल मंजरी, शौर्य बावनी आदि ग्रंथों की रचना की है. [4]

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 203.
2. गुजरात के संतों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, डा.एन.ए. व्यास, पृ. 66.
3. अखिल भारतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. महोब्बतसिंह चौहान, पृ. 238.
4. वही, पृ. 238.

मूलजी भगत

मूलजी भगत अमरेली के निवासी थे. वे प्रीतम के समकालीन थे. इन्होंने कुछ हिंदी पदों की रचना की है ।

उत्तमरामजी

आदितराम के पश्चात् इनके भाई शोभाराम के पुत्र नरोत्तमराम और इनके पुत्र उत्तमराम ने काव्य-सर्जन की परंपरा को जीवित रखा. वे केवलराम जी लिखित `बाबी विलास` में बाबी-वंश की जानकारी जोड़ते रहे. वे जूनागढ के नवाब के आश्रित थे, इनकी प्रशंसा में उत्तमरामजी कहते हैं -

उत्तम या धराहुमें नरसिंयो भक्त भयो,
तीन हुंके काज कृष्ण धाय धाय आयो है ।
नवल नवाब बहादुरखान धन्य तोको,
ऐसी भूमिका है, ताको भूपति कहायो है । [1]

रवि साहेब - सं. 1783-1860 वि०

रवि साहेब का जन्म आमोद गाँव में सं. 1783 में महा 15, गुरुवार को हुआ था. वे जाति के वैश्य थे. इनके पिता का नाम मंछाराम एवं माता का नाम इच्छाबाई था. पूर्वाश्रम में वे सूदखोर बनिया थे, पर भाण साहेब के सत्संग से इनका हृदय-परिवर्तन हुआ. और वे भक्त बन गये. भाण साहेब रवि साहेब को अपना प्रतिरूप मानते थे और इन्हें शेरखी बुलाकर समाज में सदुपदेश के प्रसार-प्रचार करने का आदेश दिया. सं. 1860 वि० में शेरखी से मोरार साहेब के साथ जाम खंभालिया जाते समय वांकानेर में कड़िया भगत के निवास स्थान पर इनकी मृत्यु हुई. मोरार साहेब इन्हें जाम खंभालिया ले गये और इन्हें समाधिस्थ किया. उस समाधि पर रामचंद्र का मंदिर विद्यमान है. [2]

रवि साहेब ने बोध चिंतामणि, आत्मलक्ष चिंतामणि, राम गुंजार

---

1. गुजराती ओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ. 24.
2. रविभाण संप्रदायनी वाणी 2. सं. मंछाराम मोती, पृ. 9,10.

चिंतामणि, भाणगीता, रविगीता और फुटकल पदों की रचना की है. इनकी साखियाँ कबीर की याद दिलाती हैं. इनकी रचनाओं में सत्संग, जीवन. जरा, भक्ति, गुरु महिमा और यौगिक प्रक्रियाओं का सुंदर समन्वय है. गुरु का महत्व बताते हुए वे कहते हैं ---

एको काम सरे नहीं, गुरु बीन भव मोहे ।
रवीदास गुरु भक्ती बीना, को उतरेगो नाही ।। [1]

समर्पण के बाद की मन की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

जब मन हरीकु सोंपीया, पीछे रह्या न कोय,
रवी जेह पीछे रह्या, सो हरी माय समाय । [2]

इस प्रकार रवि साहेब की रचनाएँ भक्ति, गुरु महिमा, समर्पण आदि भावों से पूर्ण हैं ।

खीम साहेब - सं. 1790-1857 वि०
=======

खीम साहेब, भाण साहेब के पुत्र थे. इनका उपस्थितिकाल सं. 1790 से 1857 वि० तक माना जाता है. कच्छ में रापर की सांप्रदायिक गद्दी पर वे विराजमान थे. गंगारामजी एवं मलुकदासजी इनके पुत्र थे. इन्होंने रवि साहेब को अपना गुरु माना और इनके कहने पर कच्छ में धर्मोपदेश का कार्य किया. त्रिकम साहेब जो गरोड़ा जाति के थे और अंत्यजों के उद्धार में लगे हुए थे, इनको इन्होंने अपना शिष्य बनाकर तत्कालीन धार्मिक वातावरण में क्रांति की. सं. 1857 वि० में वे रापर में समाधिस्थ हुए .

खीम साहेब ने ` खीम-रवि-प्रश्नोत्तरी `, चिंतामणि और कुछ फुटकल पदों की रचना की है ।

नाम स्मरण का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं --

जा मुखसे सियाराम न समर्या, ता मुखमें तेरे धूर परी है ।
राम नाम बिन रसना कैसी, कर उनका टुकडा टुकडी है ।। [3]

---

1. रविभाण संप्रदायनी वाणी 2.सं.मंछाराम मोती, पृ.219.
2. वही, पृ. 324.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी-डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 151.

इस प्रकार समाज सुधार के क्षेत्र में इनका बहुमूल्य योगदान रहा है.

त्रीकमदास - सं. 1790-1855 वि०

त्रीकमदास वैष्णव कवि थे. इन्होंने डाकोरलीला एवं रुक्मिणी हरण नामक प्रबंध काव्य लिखे हैं. [1] इन्होंने लगभग 160 स्फुट पदों की रचना व्रज में की है .

अपने आराध्य देव के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए वे कहते हैं --

अौरन उज्जवल रंग रूच्यो , हम काले सों प्यार कर्यो सो कर्यो ।

त्रिकम साहेब - सं. 1858 वि० समाधिस्थ

त्रिकम साहेब का जन्म कच्छ के रामवाव नामके गाँव में हुआ था. वे जाति के गरोड़ा थे. खीम साहेब से दीक्षा ग्रहण कर वे इनकी आज्ञानुसार चित्रोड़ नामक गाँव में रहने लगे. भीमदासजी और नाथुराम जी इनके प्रमुख शिष्य रहे. इन्होंने अंत्योदय का सुंदर कार्य किया है. इन्होंने सं. 1858 वि० में जीवित समाधि ली थी ।

अपने सत गुरु के महत्व का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं --

पान परवाना प्रेमका सतगुरु दीया शीखाई । [2]

अपने सतगुरु के आदेश का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

मेरे सतगुरु लखी दीया एवा परवाना,
तेरा अगम पंथ नीरवांणा । [3]

इनकी रचनाओं में गुजराती, अरबी-फारसी आदि भाषाओं के शब्द देखने को मिलते हैं.

---

1. गुजरात के हिंदी गौरव ग्रंथ- डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 4.
2. रविभाण संप्रदाय नी वाणी 2 सं. मंछाराम मोती, पृ. 449.
3. वही, पृ. 443.

वली - मृत्यु सं. 1764 वि०

वली का पूरा नाम वली मुहम्मद था. इन्होंने अपने काव्य में दक्खिनी और उर्दू का सुन्दर समन्वय किया, इसलिए इनको दक्खिनी और उर्दू के बीच की कड़ी माना गया है.[1] इन्होंने काव्य के विभिन्न रूपों- गज़ल, मसनवी, रूबाई आदि का अपने काव्य में उपयोग किया है. इनकी मृत्यु सं. 1764 वि० में अहमदाबाद में हुई.

बूटिया - 18 वीं शती का पूर्वार्ध

बूटिया का अस्तित्व 17 वीं शती के अंत एवं 18 वीं शती के प्रारंभ के संधिकाल में रहा हो ऐसा अनुमान किया जा सकता है.[2] इनके द्वारा रचित बारह पद उपलब्ध हैं, जिनमें से ` जेणे गगन दोहीने दूध पीधां रे ` पद रहस्यवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है. इनके पदोंकी भाषा गुजराती हिंदी मिश्रित है . ये वेदांती कवि हैं. इन्होंने जीव और जगत, आत्मा और परमात्मा के संबंधों के विचारों को ` कूट ` कर व्यवस्थित करके काव्याभिव्यक्ति दी है, जिसके कारण ` बूटे क्यों कूटो ` ऐसा कहा जाता है. इनके बारे में पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है.

मेकनदादा - मृत्यु 1786 वि.सं.

दुलेराय कारणी ने मेकनदादा को ` कच्छ का कबीर ` कहा है.[3] कबीर की तरह वे सुधारक भी थे. समाज में व्याप्त बाह्य आडंबर एवं अंध विश्वासों का इन्होंने हमेशा विरोध किया. इनका जन्म विक्रम की 18 वीं शती के प्रारंभ में नानी खोंभडी नामक गाँव में हुआ था. इनके पिता का नाम हरधोलजी और माता का नाम पाबांबा था. इन्होंने यौगिक क्रियाओं के

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन- डा. रामकुमार गुप्त, पृ. 138.
2. कवि चरित भाग 1,2 के.का. शास्त्री, पृ. 560.
3. कच्छना महान संत मेकनदादा, पृ. 76.

आधार पर दो बार बारह बारह वर्षों का तप किया था. मूक प्राणियों के प्रति भी इनके हृदय में ममता थी. इनके पास लालिया नामक एक गधा, तथा मोतिया नामक एक कुत्ता था. ये दोनों ` रेगिस्तान के फरिश्ते ` के नाम से विख्यात थे. कुत्ता रेगिस्तान में भटकनेवाले दुःखी यात्रियों के पास जाकर भौंकता था, उसकी आवाज़ सुनकर पानी की पखाल लादे गधा वहाँ पहुँच जाता था. इस प्रकार कच्छ के रेगिस्तान में पानी पीकर प्यासे पथिक तृप्ति का अनुभव करते थे. [1] इस प्रकार वे जनसेवा को ही प्रभु सेवा मानते थे. सं. 1786 वि० की काली चौदस, शनिवार के दिन दादा ने अपने बारह शिष्यों के साथ जीवित समाधि ली. [2] इनके काव्य में राम-रहीम की एकता पर विशेष बल दिया गया है . वीर एवं संत का लक्षण बताते हुए वे कहते हैं --

सूरवीर अरु संत को, वनमें नहीं फिरना,
जनसेवा की साथमें, रामभजन करना ।

कच्छना महान संत मेकनदादा-पृ. 99.

इनकी भाषा में गुजराती, कच्छी एवं हिन्दी का समन्वय है.

कृष्णदास - 18 वीं शती का मध्यभाग

कृष्णदास कबीरपंथी कवि थे. वे सूरत में तापी नदी के किनारे स्थित अश्विनी-आश्रम में रहते थे. [3] इन्होंने सधुक्कड़ी भाषा में ` ज्ञान प्रकाश `, ` यदु नंदन ` और ` रघुवंश मणि ` नामक ग्रंथों की रचना की है. यदुनंदन में कृष्ण चरित्र और रघुवंश मणि में राम चरित्र पर प्रकाश डाला गया है. ज्ञानगंगा में ज्ञान की महिमा बताई गई है और जीवन में गुरु का महत्व प्रतिपादित किया गया है.

हाशिमअली - उपस्थितिकाल सं. 1783 वि०

हाशिमअली गूजरी की परंपरा के कवि हैं. कुछ आलोचक इन्हें

---

1. कच्छना महान संत मेकनदादा, पृ. 45.
2. वही, पृ. 63.
3. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डा. रामकुमार गुप्त, पृ. 147.

बुरहानपुर [म. प्र.] का मानते हैं, किन्तु अंतःसाक्ष्य के आधार पर वे गुजरात के प्रतीत होते हैं .[1] वे अपने मर्सिया के लिए विख्यात हैं . इनके मर्सियों का संग्रह 'दीवान हुसेनी' है, जिसमें 238 मर्सिया हैं.

रामचंद्र नागर - उपस्थितिकाल 1700 वि.सं.

भक्त कवि रामचंद्र नागर ने 'गीत गोविंदादर्श' और 'लीलावती' नामक ग्रंथों की रचना की है. वे गुजराती नागर थे और उत्तर प्रदेश में रहते थे.[2]

रामचंद्र नागर -

रामचंद्र नागर गुजराती नागर थे. इन्होंने 'विचित्र मालिका' और 'वृज विलास कथा' नामक दो ग्रंथों की रचना की है.[3] इनके संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है.

भगवान- जन्म सं. 1770 वि०

भगवान सूरत के निवासी थे. इनका जन्म सं. 1770 वि० में हुआ था. वे पटेल जाति के थे. इन्होंने श्रृंगार सिंधु नामक ग्रंथ की रचना की है. 'मिश्रबंधु विनोद' से इनका निम्नलिखित पद उद्धृत है --

> चलि गयो चंद्र औ तरैया रहीं भोर की-सी,
> ससिको सरूप गयो छाले रहे आन जू ।
> ---------- ---------------
> गुनको जहाज लूटो गयो 'भगवान' जू ।।[4]

---

1. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन - डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ.152.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो-डाह्याभाई देरासरी, पृ.11.
3. वही, पृ. 12.
4. मिश्रबंधु विनोद भाग-4 - मिश्रबंधु, पृ. 63.

रघुराम - रचनाकाल सं. 1757 वि०
=======

रघुराम अहमदाबाद निवासी विसनगरा नागर कवि थे . इन्होंने सं. 1757 वि० चैत शुक्ल 2 , गुरुवार के दिन ` सभासार ` नामक ग्रंथ की रचना की थी. [1] इन्होंने ` माधव विलास ` नामक ग्रंथ की रचना भी की थी.

राजे :- रचनाकाल सं. 1778 वि०
====

राजे का रचनाकाल सं. 1778 वि० माना जाता है . गुजराती साहित्य में ये कवि उपेक्षित रहे हैं . परम वैष्णव होने से बड़ी दीनता से ये ईश्वर की शरणागति का स्वीकार करते हैं .

राजे ने मध्यकालीन साहित्य के अभिन्न अंग जैसे बाललीला, दाण-लीला, तिथि और मास आदि का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है .इन्होंने रासपंचाध्यायी ग्रंथ भी लिखा है । राजे प्रेमलक्षणा भक्ति के कवि हैं फिर भी इन्होंने श्रृंगारिक पदों की रचना की है . [2]

राजे ने कुछ स्फुट हिंदी पद भी लिखे हैं .

महेरामणसिंह - सं. 1791-1852 वि०
=========

महेरामणसिंह का जन्म राजकोट की पुरानी राजधानी सरधार में सं. 1791 वि० में हुआ था . [3] इनके पिता का नाम लाखाजी एवं माता का नाम राजबा था. वे राजकोट के राजकुमार थे . वे विद्वानों की कदर करके इन्हें आश्रय भी देते थे . इनकी मृत्यु सं. 1852 में हुई. इन्होंने अपने 6 मित्रों की मदद से ` प्रवीण सागर ` नामक प्रेमाख्यान काव्य की रचना की है . इस ग्रंथ में कुल 84 लहरे हैं . अंतिम बारह लहरे दलपतराम और गोविंद गिल्लाभाई ने

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो,श्री डाह्याभाई देरासरी,पृ.18.
2. नभोविहार खंड -1 - रामनारायण पाठक, पृ. 113.
3. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. महोब्बतसिंह चौहान, पृ. 338.

अलग-अलग लिखकर ग्रंथ को पूर्ण किया है .[1] यह ग्रंथ शैली की दृष्टि से शास्त्रीय और पात्रों की दृष्टि से ऐतिहासिक प्रेमाख्यान है . यह ग्रंथ महाकाव्योचित गरिमा से युक्त है . इसमें महेरामणसिंह ने कच्छी, गुजराती, मराठी, उर्दू, व्रज, संस्कृत, मारवाडी आदि भाषाओं का सुंदर समन्वय करके इसे ` ज्ञान मंजूषा ` का रूप दिया है.[2]

` प्रवीण सागर ` में राजकुमार महेरामणसिंह [सागर] और लींबड़ी की राजकुमारी सुजान [प्रवीण] की प्रेमकथा वर्णित है . अनेक भाषाओं के उपयोग के कारण व्रज के पंडित इसे व्रज का ग्रंथ मानने को तैयार नहीं है.[3] ` भाषाने शुं वलगे भूर जे रणमां जीते ते शूर ` वाली अखा की उक्ति को सच माना जाय तो विद्वानों की कुछ भी राय होने पर भी इस ग्रंथ का महत्त्व नकारा नहीं जा सकता . इतिहासकारों ने भी इस ग्रंथ की सराहना की है .

` प्रवीण सागर ` के अलावा इन्होंने ` करारी के गीत ` भी लिखे हैं. प्रवीण सागर से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

हंसा मंसा को चुगे सूके सरोवर मीन
जल बरसे अग्नि झरे, कारन कौन प्रवीन ?[4]

महाराव लखपतिसिंह - सं. 1767-1817 वि0

महाराव लखपतिसिंह का जन्म सं. 1767 वि0 में भुज में हुआ था.[5] इनके पिता का नाम देसलजी तथा माता का नाम महाकुँवर था .[6] इनकी

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो-डाह्याभाई देरासरी, पृ.32.
2. वही, पृ. 33.
3. वही, पृ. 34.
4. ` सात साहेली ` दुलेराय काराणी, अखंड आनंद-अक्टूबर 1980, पृ. 206.
5. महाराव लखपतिसिंह व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व, डॉ. कांतिलाल शाह, पृ. 23.
6. वही, पृ. 25.

9 रानियाँ एवं 16 रखैल थीं , सं. 1817 वि0 में इनके अवसान पर 16 रखैल सती हुईं , पर इनकी एक भी रानी सती न हुई .

महाराव लखपतिसिंह ने लखपति श्रृंगार, लखपति मान मंजरी, सुर तरंगिणी, मृदंग मोहरा, राग सागर, सदाशिव व्याह और लखपति भक्ति विलास नामक ग्रंथों की रचना की है . इनमें से भक्ति विलास, सदाशिव व्याह एवं कुछ फुटकल पदों में इन्होंने ग्लानिपूर्ण आत्मदर्शन, निर्वेद और अवसाद की तीव्र अनुभूति व्यक्त की है , इनकी शिवभक्ति भी सराहनीय है. सुर तरंगिणी में इन्होंने अपने संगीत विषयक विचार व्यक्त किये हैं .

` भक्ति विलास ` के एकनिष्ठ भक्त प्रहलाद की निष्ठा देखिए -

मैं मन रंग्यौ स्याम सौ ऐसौ वाको रंग ।
और न रंग चढै उहां गाढौ स्याम सुरंग ।।

इनकी हिंदी सेवा का जीवंत प्रतीक है भुज की वृज भाषा काव्य शाला. वे साहित्यकारों को प्रश्रय देते थे और इनका उचित आदर भी करते थे.

इनकी वाणी में अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है . इस प्रकार इन्होंने खंड काव्य, फुटकल पद एवं शास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है .

हमीरदान रतनूं -

हमीरदान रतनूं वंशपरंपरागत चारण थे और महाराव लखपतिसिंह के कृपापात्र थे. वे जोधपुर राज्य के घड़ोई गाँव के निवासी थे. [2] वे ` रतनूं चारण ` शाखा के रत्न थे . इन्होंने लखपति पिंगल, पिंगल प्रकास, हमीरनाम माला, जदवंस वंसावलि, देसलजी री वचनिका, जोतिस जड़ाव, ब्रह्मांड पुराण, भागवत दर्पण, पिंगल कोष, चाणक्य नीति, भरतरी शतक और महाभारत रौ अनुवाद छोटे व बडे ग्रंथ लिखे हैं .

---

1. महाराव लखपतिसिंह व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व, डॉ. कांतिलाल शाह, पृ. 115.
2. वही , पृ. 204.

इन ग्रंथों में कवि ने लक्षणों के उदाहरण दिये हैं और अपने आश्रयदाता की प्रशंसा की है , इन ग्रंथों की भाषा राजस्थानी व व्रज है .

शंभुदान ईश्वरदान ' अयाची '
=====================

शंभुदान ईश्वरदान, ' रतनूं चारण ' शाखा के वर्तमान वंशज हैं , वे व्रजभाषा काव्यशाला के छात्र एवं शिक्षक रह चुके हैं , ' राष्ट्रध्वज ' नामक इनके ग्रंथ में व्रज और राजस्थानी शब्द देखने को मिलते हैं .

आचार्य कनककुशल
============

आचार्य कनककुशल व्रज भाषा की काव्यशाला के प्रथम आचार्य थे . महाराव लखपतिसिंह ने जोधपुर से बड़े सम्मान के साथ बुलाकर इन्हें भट्टार्क की उपाधि से विभूषित करके, काव्यशाला के प्रथम आचार्य के रूप में प्रस्थापित किया .[1] वे विद्वान जैन साधु थे. इनके लिखे ' लखपत मंजरी नाममाला ' एवं ' सुंदर श्रृंगार की रस दीपिका की भाषा टीका ' ग्रंथ बड़े सुंदर हैं .

' लखपत मंजरी नाममाला ' ग्रंथ का उद्देश्य व्रजभाषा के व्याकरण का ज्ञान देना था, यह स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं --

मुख्य जांनि व्याकरन मत । समुझहु यह सिद्धांत ।
शब्द सुरांतह सांत कौं पद कीजै प्रथमांत ।। [2]

इनके आचार्यत्व में व्रजकी शिक्षा एवं काव्य सर्जन का कार्य सुचारु रूप से हुआ .

आचार्य कुँवर कुशल -
=============

आचार्य कुँवर कुशल, आचार्य कनक कुशल के शिष्य थे . आचार्य कनक कुशल के बाद वे व्रजभाषा काव्यशाला के आचार्य बने. इन्होंने ' लखपति मंजरी नाममाला ' और ' गौड़ पिंगल ' नामक शिक्षा शास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है .

---

1. अखंड आनंद, अक्टूबर-1980, पृ. 201.
2. महाराव लखपतिसिंह-व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व,डॉ. कांतिलाल शाह, पृ.206.

` कवि रहस्य ` इनका काव्य शास्त्रीय ग्रंथ है . वे रीतिकालीन कवि माने जाते हैं .

कृष्णराम भट्ट
==========

कृष्णराम भट्ट जयपुर के राजा प्रतापसिंह के आश्रित कवि थे . जयपुर के राजा इनके आयुर्वेदीय चमत्कारों से प्रभावित थे. इन्होंने सिद्धभैषज मणिमाला, जयपुर विलास, पलांडुराज शतक, सारशतक आदि ग्रंथों का हिंदी मिश्रित संस्कृत में प्रणयन किया है . [1]

दुर्गेश्वर - रचनाकाल सं. 1814 वि०
======

दुर्गेश्वर खंभात के निवासी थे और जाति के ब्राह्मण थे. बेनीदास कवि ने साहित्य-सिंधु नामक ग्रंथ का आरंभ किया था, परन्तु इसी बीच खंभात के नवाब के साथ युद्ध में मारे जाने के कारण यह ग्रंथ अपूर्ण रहा. इनकी पत्नी ने अपने पति की स्मृति में दुर्गेश्वर के द्वारा इस ग्रंथ को सं. 1814 वि० में पूर्ण करवाया , इस ग्रंथ की रचना संस्कृत ग्रंथों के आधार पर की गई है.` मिश्रबंधु विनोद ` में कवि एवं ग्रंथ का परिचय इस प्रकार दिया गया है --

खम्भातयतपुर-वासी दुरगेसर को
मान दे बुलाई ग्रंथ बनवायो नयो है,
---------- ---- --- -----
संवत अठारह चतेरदस चैत मास,
नौमी रबिवार ग्रंथ सम्पूरन भयो है । [2]

चांदण शासन - रचनाकाल सं. 1802 वि०
==========

चांदण शासन पाटण के राजा चंद्रसेन के आश्रित कवि थे. इन्होंने ` चारणी पिंगल एवं ` केसर रास ` नामक दो ग्रंथों की रचना की हैं . ` चारणी पिंगल ` ग्रंथ में पाटण के राजा के द्वारा बड़नान राज्य की स्थापना

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ. 59.
2. चतुर्थ भाग- मिश्रबंधु, पृ. 65.

एवं चंद्रसेन राजा की सहायता का वर्णन है . ` केसर रास ` ऐतिहासिक ग्रंथ है, जो वीर रस से पूर्ण है . इस ग्रंथ में झाला वंशीय राजाओं के युद्धों का चित्रात्मक वर्णन है . ` मिश्रबंधु विनोद ` चतुर्थ भाग में दिया हुआ उदाहरण द्रष्टव्य है -

> इदाला श्री दन्तमाला, डरे अरणे दे अणि ।
> बुहुमताम्बि मुड़ालास पवित्रम आननहा सति नमोईश ।।
> दामुजी सरदार दले, पुलरू द्रुहि चाले ।
> सुवादर भाखै सीन जे उद्गु झखराले । [1]

जसुराम - रचनाकाल सं. 1814 वि0

श्री डाह्याभाई देरासरी ने जसुराम को भरूच जिले के आमोद गाँव का निवासी माना है और इन्हें जामनगर के राजा का आश्रित कवि बताया है . [2] इन्होंने सोलंकी उदयसिंह की प्रेरणा से राजनीति विषय पर सं. 1814 वि. में ग्रंथ लिखा है, जिसमें 10 छप्पय, 66 कवित्त और 60 दोहे हैं . इस ग्रंथ में अपने आश्रयदाता की भर्त्सना करके कवि ने अपने मस्त हृदय का परिचय भी दिया है --

> जसु न जावें जामसुँ, बड भाटन कोटेक ।
> तेरे मांगन बहुत है, मेरे भूप अनेक ।। [3]

कवीश्वर दलपतिराय और बंशीधर - रचनाकाल सं. 1792 वि0

कवीश्वर दलपतिराय और बंशीधर दोनों मित्र थे और अहमदाबाद के निवासी थे . इन दोनों ने मिलकर सं. 1792 वि0 में ` अलंकार रत्नाकर ` नामक लक्षण ग्रंथ की रचना की . वे दोनों उदयपुर नरेश जगतसिंह के आश्रित कवि थे . ` अलंकार रत्नाकर ` ग्रंथ में इन कवियोंने अपने एवं जसवंतसिंह, सेनापति, केशवदास, गंग, बिहारी, रहीम, मतिराम, रसखान आदि अन्य

---

1. चतुर्थ भाग- मिश्रबंधु, पृ. 62.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ. 60.
3. वही, पृ. 61.

44 कवियों के काव्यों में से उदाहरण दिये हैं .[1] काव्य में अलंकार का महत्व बताते हुए वे कहते हैं --

जदपि नार सुंदर सुधर दिपत न भूखन हीन ।
त्यों न अलंकृति बिनु लसै कविता सारस प्रबीन ।।[2]

` अलंकार रत्नाकर ` ग्रंथ अलंकार शास्त्र के अनुसंधान-कर्ताओं के लिए उपयोगी है. इसमें गद्य का प्रयोग भी हुआ है .

झुमानबाई -

झुमानबाई ने हिंदी में सरस एवं सुन्दर पद लिखे हैं . इनके पिता भट्ट मेवाडा लालजी , रायगढ के निकट सांदरणी गाँव के निवासी थे. बचपन में साधु-संतों के सत्संग के कारण झुमानबाई के जीवन पर इनके सदउपदेश का काफी प्रभाव पड़ा था, फलस्वरूप इन्होंने कौमार्य व्रत धारण किया था . वयस्क होने पर माता-पिता ने इन्हें शादी के लिए समझाने का प्रयत्न किया , पर वे असफल रहे . इन्होंने ` झुमानदास ` छाप से पदों की रचना की है .[3]

किशनदास - रचनाकाल सं. 1767 वि०

किशनदास अहमदाबाद के जैन कवि थे. बचपन में अहमदाबाद के लोंको-गच्छ के श्रीपूज के गुरुभाई संघराजजी ने इनको पढ़ाया और काव्य-निर्माण की शिक्षा दी . इन्होंने अपनी बहन रतनबाई के निधन पर, अश्विन शुक्ल 10, सं. 1767 वि० में ` उपदेश बावनी ` नामक ग्रंथ की रचना की, पर यह ग्रंथ जनसमाज में किशनबावनी नाम से विख्यात है.[4] कवि ने इस ग्रंथ की रचना वेदांत के आधार पर की है. कवि ने प्रथम जैन सूत्र ` ॐ नमः सिद्धम ` के

---

1. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो - डाह्याभाई देरासरी, पृ. 17.
2. वही, पृ. 15.
3. वही, पृ. 41.
4. वही, पृ. 24.

आरंभिक वर्णों से कवित्तों का आरंभ करके बाद में ` अ ` से ` ज्ञ ` तक के वर्णों का कवित्त के आरंभ में प्रयोग करके काव्य रचना की है . कवि की वाणी जोरदार है एवं ओज से भरी हुई है , एक जमाने में लोग किशनबावनी का पाठ करते थे.

इन्होंने अपने काव्यों में जीवन की क्षणभंगुरता का परिचय देकर भक्तों को भगवदभक्ति की ओर प्रेरित होने को कहा है --

पंथ को मुकाम कछु, बापको न गाम यह
जैबो निज धाम तातें कीजे काम यश के
पानी में पतासा तैसा तनका तमासा है । [1]

लालदास साहेब - सं. 1797-1889 वि०
============

लालदास साहेब का जन्म सं. 1797 वि० चैत शुक्ल 9, सोमवार के दिन पाटण में हुआ था . [2] इनके पिता का नाम मनोहर एवं माता का नाम लक्ष्मीबाई था. बचपन से ही वे भगवद-भक्ति में लीन रहने लगे . इन्होंने अपने गुरु रवि साहेब के बारे में कहा है ---

` लाल ` कहे मोही सदगुरु मलीया, रविराम गुरु ज्ञानी ।
संत शब्द का भेद बताया, नाम दिया निरवानी ।। [3]

सं. 1889 वि. माघ शुक्ल 11, के दिन इन्होंने जीवित समाधि ली. पाटण में इनका समाधिस्थान है .

चांदरणा छंद, सांकली, रेखता तथा कुछ फुटकल पदों की इन्होंने रचना की है. इनके पद संगीत तत्त्व से भरे हुए हैं. इन रचनाओं में बाह्याचार का खंडन किया गया है. नाम स्मरण का महत्त्व समझाते हुए वे कहते हैं --

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ. 26-27.

2. आधुनिक गुजरातना संतो- डॉ. केशवलाल ठक्कर, पृ. 28.

3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 168.

चेत बे चेत अचेत क्युं आंधरा ? आज अरु काल में उठ जाई ,
खबर कर खबर कर, खोज ले नामकु, याद कर शब्द संभाल भाई । [1]

इनकी भाषा सधुक्कड़ी हिन्दी है, जिसमें गुजराती के अलावा अरबी-फारसी के शब्द भी विद्यमान हैं .

वजमलजी महेडुं - अस्तित्वकाल सं. 1799 वि0

वजमलजी परवतजी महेडुं जामनगर के राजा विभाजी के आश्रित कवि थे. इन्होंने विभा विलास नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा है. [2] इसके अतिरिक्त जिय प्रकाश, अमरकोष भाषा एवं अंगदविष्टि नामक ग्रंथों की रचना भी इन्होंने की है .

उपरोक्त संत कवियों के अतिरिक्त इस शती में नेमिविजय, दवेराम, रंगविजय, नयसुंदर, महेशमुनि, जीवराज, रत्नजित, रामविजय, धनराज, धर्मसिंह, धर्ममंदिर, जिनहर्ष, जिनरंग आदि संत कवियों ने भी ग्रंथ या स्फुट पदों की रचना करके समाज को नयी दिशा दी और उस विकास परंपरा को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया .

भीम साहेब -

भीम साहेब पहुँचे हुए संत थे. वे त्रिकम साहेब के शिष्य थे . इन्होंने कुछ हिन्दी पदों की रचना की है . [3] वे रवि-भाण संप्रदाय के संत थे.

देवा साहेब - सं. 1800 वि. उपस्थितिकाल

देवा साहेब 19 वीं शती के आरंभ में विद्यमान थे. वे कच्छ के हमला गाँव के निवासी थे. और जाति के क्षत्रिय थे. इनके गुरु का नाम रामगुरु था. [4]

---

1. आधुनिक गुजरातना संतो- डॉ. केशवलाल ठक्कर, पृ. 29.
2. गुजरात के कवयों की हिंदी काव्य साहित्य को देन , डा. एन.ए. व्यास, पृ. 106.
3. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन, डा. रामकुमार गुप्त, पृ. 206.
4. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 353.

इन्होंने अपने गुरु के आदेश से ग्रार्हस्थ्य धर्म का पालन किया, परन्तु 20 वर्ष की आयु में ही इन्हें संसार से विरक्ति आ गई और वे हमला के पास `चीन की गंगा` नामक नदी के किनारे कुटिया बाँधकर रहने लगे.

देवा साहेब ने रामसागर, हरिसागर एवं कृष्ण सागर नामक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें ज्ञान, उपासना एवं कर्म का महत्व समझाया गया है. इनके उपरांत इन्होंने कुंडलियाँ, साखियाँ एवं पदों की रचना भी की है. इनका शिष्य समुदाय विशाल था. इनके शिष्य बिहारीदास ने वांढाय [कच्छ] में, सेवाराम ने सिंध में तथा कृष्णदास ने गोटड़ी में गद्दियाँ प्रस्थापित कीं.

देवा साहेब पहुँचे हुए संत थे. वे जीवन की क्षणभंगुरता समझाते हुए कहते हैं --

मूरख मत जान कछु मेरा, शरीर एह अंत, नहीं तेरा ।
एक दिन सब छोड़ी जाना, समझ उर ऐसे यह ज्ञाना ।। [1]

`प्रीतम` को पाने का आनंद व्यक्त करते हुए, उसे पाने की राह दिखाते हुए वे कहते हैं --

प्रीतम मुझमें पाया, मेरा प्रीतम मुझमें पाया ।
आनंद आज अपार ही मेरे, तनके ताप विलाया ।।
खोजत खोजत दिन भये केते करतदि कोटि उपाया ।
जबतें मिले सतगुरु भेदू तिनहिं पलमें पाया ।। [2]

राजा साहेब अमरसिंहजी -

अमरसिंहजी झाला वंश के राजा थे. इन्होंने सं. 1904 वि. तक ध्रांगध्रा में राज्य किया. गुजरात में कई राजाओं ने काव्य सर्जन को प्रोत्साहन दिया, तो कुछ राजाओं ने स्वयं सर्जन भी किया. इन्होंने कई कवियों को

---

1. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 354.
2. वही, पृ. 359.

आश्रय दिया था. वे भी भक्ति भाव में लीन होकर पदों की रचना करते थे. इन्होंने हिंदी में कुछ पद लिखे हैं . [1]

वस्तोविश्वंभर - सं. 1831 वि. उपस्थितिकाल

वस्तोविश्वंभर का जन्म खंभात के पास सकरपुर नामक गाँव में हुआ था -

गुजरात मध्ये खंभात गाम
सकरपुर माँही छे निज धाम ।। [2]

इनके जन्म के समय का पता नहीं चलता, पर सं. 1831 वि. में वे उपस्थित थे, ऐसा इनके साखी ग्रंथ के आधार पर कहा जा सकता है, क्योंकि साखी ग्रंथ सं. 1831 वि. में पूर्ण किया गया. इनके गुरु विश्वंभर थे. गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करने हेतु, अपने नाम के साथ इन्होंने गुरु का नाम भी जोड़ा है. गुरु के गुरु अमरपुरी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए इन्होंने ' अमरपुरी गीता ' की रचना की है. इन्होंने गुजराती में वस्तुगीता, वस्तुविलास, अमरपुरी गीता, कक्का, तिथि, गरबी आदि ग्रंथों की रचना की हैं . हिन्दी में इन्होंने साखी ग्रंथ, गुरु गीता, मंगल काव्य, धोल और फुटकल पदों की रचना की है. वस्तो ने कुल 2641 साखियाँ, 88 अंगों में बाँटकर लिखी हैं. वे अखा की परंपरा के कवि ज्ञात होते हैं .

' मिथ्या ज्ञानी को अंग ' में मिथ्या ज्ञान के खोखलेपन को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं -

कोडी गाँठे बाँध के मणि लेवा जाय ।
मूरख मिथ्या ज्ञानीकुं लाज क्युं नहीं आय ।। [3]

' चेतामणी को अंग ' में वे अधिकार की बात बताते हुए कहते हैं -

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, डा. एन. ए. व्यास, पृ. 58.
2. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 360.
3. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा, डा. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ. 272.

एक बुंद पड़े छीपमें, उनका मोती थाय ।
एक अहिमुख में पड़े, उनका गरल लखाय ।। [1]

` अरस परस ` को अंग ` में ईश्वर से अद्वैत की भावना व्यक्त करते हुए वे कहते हैं --

राम हमारे समुद्र है, हम समुद्र की लहेर ।
ए न्यारा कैसे पडे, दो रहत एक घेर ।। [2]

कबीर और अखा की तरह बाह्याडंबरों का विरोध करते हुए वे ` संत भेद को अंग ` में कहते हैं --

तनका मुंडया बहु फरे, मनका फरे न कोय ।
मन मूंडे तन वश करे, ऐसा वीरला हो ।। [3]

कबीर की तरह वे भी ` बेहद को अंग ` में कहते हैं --

घर बाली तीरथ करे, उनका वहां तो काम ।
घर रखे तीरथ करे, बेहद में नहीं ठाम ।। [4]

इनकी भाषा व्रज एवं गुजराती से प्रभावित सधुक्कड़ी हिंदी है ।

जीता मुनिनारायण - 18 वीं शती मध्य, 19 वीं शती पूर्वार्ध

जीता मुनिनारायण नड़ियाद के बारोट थे और फिर वे बाद में सूरत के निकट आमरोली नामक नगर में रहने लगे. तापी नदी के अश्विनीघाट के सामने उतराण में इनकी समाधि विद्यमान है. इनके जन्म एवं मृत्यु का समय निश्चित नहीं है, किंतु इनका उपस्थितिकाल 18 वीं शती के मध्य से लेकर

1. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा-डा. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ. 272.
2. वही, पृ. 274.
3. वही, पृ. 276.
4. वही, पृ. 293.

19 वीं शती के प्रारंभ तक माना जाता है . इन्होंने अखा प्रणाली के संत हरिकृष्ण का अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है --

हरिकृष्ण अनादि मल्या, आवागमन न होय । [1]

इनके शिष्यों में कल्याणदास, मोहनदास ब्रह्मचारी एवं संतराम महाराज उल्लेखनीय हैं. आज भी सूरत के आसपास में वे जीवन्मुक्त महात्मा के रूप में पहचाने जाते हैं. वे चमत्कार सिद्ध योगी थे और हमेशा उन्मनी मुद्रा में स्थित रहते थे .

जीता मुनिनारायण ने हिंदी में कुछ साखियाँ, पद एवं काफ़र बोध की रचना की है . इनकी रचनाओं में वेदांत समर्थित आत्मानुभव की ध्वनि प्रतिध्वनित होती है .

सच्चे फकीर का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं --

आशा किनकी नव करे, शब्दे रहवे स्थिर ।
मुनि जिता तब जाणीए, साचा सोही फकीर ।। [2]

साधुजन को परखीए, रहे उनमुनि घेर ।
नहीं किसी से दोस्ती ! नहीं किसी से वेर ।। [3]

हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में वे कहते हैं --

हिंदू ध्यावे देहरा, मुसलमान ध्यावे मस्जिद ।
फकीर वहां ध्यावे, जहां दोनुं की परतीत ।। [4]

इस प्रकार जीता मुनिनारायण कबीर- अखा की परंपरा की कड़ी के रूप में ही हैं ।

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 243.
2. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा, डा. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ. 99.
3. वही, पृ. 100.
4. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 248.

निरांत - सं. 1803 - 1908 वि०

निरांत का जन्म वडोदरा जिले के करजण तालुका के देथाण गाँव में हुआ था. डा. केशवलाल ठक्कर के अनुसार वे जाति के राजपूत थे. [1] इनके पिता का नाम उमेदसिंह और माता का नाम हेतबा था . कनैयालाल मुंशी इन्हें जाति के पाटीदार मानते हैं . [2]

वास्तव में इन कारणों से वे राजपूत ही माने जा सकते हैं -

1. राजपूतोंमें नाम के पीछे सामान्यतः सिंह लगता है. इनके पिता का नाम उमेदसिंह था.
2. निरांत की पहली शादी 16 वर्ष की उम्र में भरूच जिले के तरसरा गाँव के परमार की कन्या कुँवरबा से हुई थी और दूसरी शादी करजण तालुका के संभोई गाँव में परमार कन्या सीताबा से हुई थी .
3. सामान्यतः राजपूतों में कन्या के पीछे ` बा ` प्रत्यय लगाया जाता है- हेतबा, कुँवरबा और सीताबा नामों से भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे राजपूत जाति के ही थे. अस्तु .

बचपन से वे सत्संगी थे और संगीत के ज्ञाता होने से वे भजन भी सुंदर ढंग से गाते थे. पादरा तालुका के मासर रोड गाँव के निवासी रामानंदी साधु गोकुलदास से इन्होंने दीक्षा ली थी. गुरु के विदेह होने पर इन्होंने उपदेश कार्य शुरु किया.

निरांत ने साखी, कुंडलियाँ, काफी, तिथि, मास आदि पदों का निर्माण किया. वे सोऽहं मंत्र का जाप किया करते थे .

अपने काव्य में गुरुकृपा का महत्त्व बताते हुए वे कहते हैं --

गिरि गिरिवर सब ढूंढिया, देखा देश विदेश ।
ज्ञानी राम पाया नहीं, बिना गुरु उपदेश ।। [3]

---

1. आधुनिक गुजरातना संतो, डा. केशवलाल ठक्कर, पृ. 75.
2. गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर, कनैयालाल मुंशी, पृ. 258.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 213.

नाम स्मरण का महत्व बताते हुए वे कहते हैं -

नाम बिनां कोई नव तरे भवसागर के मांय ।
` निरांत ` वंदू नामने, ज्यां ज्यां देखुं त्यांय ।।
अपार लीला नामकी, नामे पामे धाम ।
नाम जाण्यो जेहेणे, मिलिया सुंदर श्याम ।। [1]

धीरो भगत - सं. 1808-1881 वि०

` धीरो भगत ` का जन्म सं. 1808 वि. में सावली तालुका के गोठडा नामक गांव में हुआ और निधन सं. 1881 वि. में हुआ. इनके पिता का नाम प्रतापराय एवं माता का नाम देवबा था. इनकी पत्नी जतनबा बड़ी झगड़ालु थी .

पूर्वाश्रम में वे साधारण वैष्णव थे , पर अध्ययन एवं सत्संग के प्रभाव से इन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई. धर्म के नाम पर चलने वाले बाह्याडंबरों का हरदम विरोध करते रहे . सांसारिक व्यापारों को इन्होंने ` मृगतृष्णा ` एवं दौलत को ` दीवानी ` माना. इन्होंने गुजराती के साथ हिंदी पद भी लिखे हैं . इनकी ` काफियां ` बहुत ही मशहूर हैं. धीरा की वाणी कबीर और अखा की तरह सरल फिर भी टेढी, बोधगम्य, पर अगम्य है.

अपनी वाणी में ईश्वर की सर्वसत्ताधीशता की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं --

तेतीस कोटि हलचल हले, चले चंद शशि भान,
दास ` धीर ` हरि हुकमसें, हुकम बिन हले नहीं पान । [2]

सांसारिक पदार्थों की नश्वरता एवं गुरु-शरण का महत्व बताते हुए वे कहते हैं --

हस्ति घोड़ा माल खजाना, कोई तेरे काम नहीं आवे ।
अचेत होकर क्यूं बैठा है, पिछे तूं पस्तावे ।।

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 216-17.
2. वही, पृ. 226.

सदगुरुजी के शरनन जाई, जाई चरने शीश नमाई ।
आधीन होकर निशदिन रहेना, जमकी त्रास मिटाई ।। [1]

इस प्रकार संत कवियों में धीरो भगत का स्थान विशिष्ट है .

हरिनाथ - रचनाकाल- सं. 1826 वि०

काशी के निवासी हरिनाथ गुजराती ब्राह्मण थे. इन्होंने सं. 1826 वि० में ` अलंकार-दर्पण ` नामक लक्षण ग्रंथ की रचना की, जिससे वे आचार्य माने जाने लगे. इन्होंने मुहम्मदशाह पर भी ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की है. इनकी रचनाओं की भाषा ब्रज है, एक उदाहरण दृष्टव्य है -

आगमन पीतम को सुनत छबीली बाल,
हरखि लजाति हिय होत सुख साज है । [2]

मोरार साहेब - सं. 1814-1905 वि०

मोरार साहेब का जन्म मारवाड़ के थराद नामक गाँव में सं. 1814 वि. में हुआ था. [3] वे वाघेला राणावंश के राजकुमार थे. इनका नाम मानसिंह था. रविसाहेब की वाणी से प्रभावित होकर इन्होंने सं. 1832 वि. में इनसे दीक्षा ग्रहण की. राजकुमार के वैराग्य से माता पगली सी हो गई और दौड़कर रवि साहेब के पास पहुँची . रवि साहेब ने इन्हें माता के साथ रहने की आज्ञा दी. माता की मृत्यु के पश्चात् वे पुनः रवि साहेब के पास शेरखी में रहने लगे. रवि साहेब ने इनको सं. 1843 वि. में खंभालिया जाने की आज्ञा दी. सं. 1905 वि० के चैत्र शुक्ल 2 को इन्होंने समाधि ली. इनके बाद खंभालिया की गद्दी पर इनके शिष्य अग्रवालजी आरूढ़ हुए और इनके बाद चरणदास जी उस गद्दी के उत्तराधिकारी बने. हिन्दू और मुसलमान

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 231.
2. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो - डाह्याभाई देरासरी, पृ. 27.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 154.

दोनों इनके शिष्य थे, इनमें से दास होथी का नाम उल्लेखनीय है .

मोरार साहेब ने हिंदी एवं गुजराती में रचनाएँ की हैं. सदगुरु विरह, गुरु महिमा, चिंतामणि, बोल तथा कुछ फुटकल पद इन्होंने लिखे हैं . इनके पद ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य से भरे हुए हैं .

वैराग्य से भरा हुआ इनका यह पद बहुत ही मशहूर है, जो आकाशवाणी से समय-समय पर प्रसारित होता रहता है -

मैया मेरो मनवो भयो वैरागी, मारी नेह तो भजनमां लागी ।

जीवन की क्षणभंगुरता बताते हुए वे कहते हैं -

आखर एक दिन यार उठ जाना,
तेरे संग कोई चले ना निदाना ।[1]

परमात्मा के प्रति विरह निवेदन करते हुए वे कहते हैं -

मेरे प्रीतम चले परदेश, जीवन मैं कैसे जीवुं ?[2]

गौरीबाई - सं. 1815-1865 वि०

गौरीबाई का जन्म सं. 1815 वि० में डुंगरपुर नामक नगर में हुआ था. वे वड़नगरा नागर थीं. सिर्फ छह या सात साल की उम्र में इनका विवाह हुआ और एक ही सप्ताह में इनके पति की मृत्यु हुई.[3] इससे इनके हृदय का भक्तिभाव जागा . इन्हें मीरां की तरह अपने कुटुंब की खौफगी का शिकार बनना पड़ा, फिर भी वे अपनी राह से टससे मस नहीं हुईं . इन्होंने भगवदगीता रामायण आदि ग्रंथों का अध्ययन किया. सं. 1836 वि. में डुंगरपुर के राजा शिवसिंह ने श्रीकृष्ण का मंदिर बंधवा दिया और वे वहाँ रहकर भजन-कीर्तन करने लगीं. सं. 1860 में वे वृंदावन की यात्रा के लिए निकलीं, मार्ग में जयपुर के राजा प्रतापसिंह ने इनका सन्मान किया. वृंदावन

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 158.

2. वही, पृ. 159.

3. वही, पृ. 232.

होते हुए वे काशी गयीं और राजा सुंदरसिंह से इनका परिचय हुआ, राजा को इन्होंने योग सिखाया. सं. 1865 वि. में इन्होंने समाधि ली.

गौरीबाई के गुजराती एवं हिंदी पदों की संख्या 650 के लगभग की बताई जाती है. इन पदों में ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का समन्वय है. इनकी भक्ति सांप्रदायिकता से परे है. इनके पदों से ऐसा लगता है कि वे सगुण से क्रमश: निर्गुण की ओर झुकी हों.

कृष्ण के बाँकेपन का वर्णन करते हुए वे कहती हैं -

बाँकी चाल चलत हो मोहन, बाँके हो गिरधारी रे,
बाँको मुगट बन्यो मनमोहन, कुंडल की छब न्यारी रे। [1]

मानव जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए वे कहती हैं -

मिट्टी का ओढना, मिट्टी का बिछौना,
आखिर की निशान, मिट्टी में समाना। [2]

प्रश्नोत्तरी के रूप में दार्शनिक बातों को समझाती हुई वे गद्य का प्रयोग करती हुई कहती हैं -

स्वामी, वैराग्य कीसकुं कहीए ?
चौदभुवन पर्यंत कागविष्ट समतुल देखे याकु वैराग्य कहीए ।
स्वामी, जीतवो कीसकुं कहीए ?
अपने चंचल मनकु जीते, अरु विषय वासना त्यागे, इंद्रि वश करे,
लिंगभंग करे याकु जीतवो कहीए । [3]

इस प्रकार गौरीबाई की वाणी इन्हें श्रेष्ठ निर्गुण संत कवियों की पंक्ति में बिठा सकती है.

---

1. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा -डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ.90.
2. वही, पृ. 91.
3. वही, पृ. 93.

कल्याणदास - सं. 1876 समाधिस्थ

कल्याणदास पहुँचे हुए संत थे. वे खंभात के निकट स्थित उनेल नामक गाँव के पाटीदार थे. इनके गुरु का नाम जीतामुनि नारायण था. वे अखा-प्रणाली के अंतिम संत थे. मोहनलाल ब्रह्मचारी, संतराम महाराज, आलोच्य कवि करुणासागर और छोटम इनके समकालीन थे.

कल्याणदास अपने पास एक माला, चिमटा एवं छाता हमेशा रखते थे. इनकी साधना के स्थान तरसाली, चित्राल और कहानवा रहे. कहानवा में इन्होंने अश्विन कृष्ण 2, सं. 1876 वि. में खेडा जिले के कलेक्टर मि.ग्रेंड से हँसते हुए बात करते हुए समाधि ली. नासूर का दर्द मिटाने के कारण जयसिंहराव गायकवाड ने इनको कहानवा बंगला भेंट दिया था. [1]

कल्याणदास ने साखियाँ, कापट बोध, अजगर बोध और कुछ फुटकल पदों की रचना की है.

कल्याणदास ने माया को 'धुतारी' कहा है और स्वयं को इससे मुक्त माना है -

> धुतारी माया ने सब जग धूत लिया ;
> धूते बिन रह्यो एक ऐसो अवधूत है । [2]

हिन्दू-मुस्लिम एकता के संदर्भ में वे कहते हैं कि दोनों को अपने हृदय में राम-रहीम के दर्शन करने चाहिए -

> राम रहेमान को देख देदार कर ;
> बेहरा होयके काहे खोवे ; [3]

संतराम - सं. 1887 वि. में समाधिस्थ

संतराम महाराज को अखा की संत प्रणाली के जीतामुनि नारायण का

---

1. आधुनिक गुजरात ना संतो - केशवलाल ठक्कर, पृ. 2.
2. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा, डा. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ. 103.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी-डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 251.

शिष्य माना जाता है. इन्होंने परोक्ष रूप से ` दखन ` का संकेत करके अखा परंपरा की ओर संकेत किया लगता है क्योंकि सूरत में जीतामुनिनारायण रहते थे और सूरत दक्षिण गुजरात में आया है . वे कहते हैं --

मन मेरा पूरव फरिया, पछम फरिया, दखन में दक्षा लिना,
सद्गुरु मोए आन मिले तब, अंतर आसन किना । [1]

संतराम महाराज अवधूत कोटि के संत थे. वे परिव्राजक संत थे और सूरत, वडोदरा, पादरा, उमरेठ, खंभात आदि स्थानों में घूमते घूमते सं. 1872 वि. में वे नडियाद आये थे. नडियाद में इन्होंने सं. 1887 वि. माघ पूर्णिमा के दिन जीवित समाधि ली, इनके प्राणों की ज्योति से जो दीपक प्रज्वलित हुआ था, वह आज भी नडियाद के संतराम मंदिर में प्रज्वलित रूप में सुरक्षित है. वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे. आज भी संतराम मंदिरोंमें गुरुपादुका का ही पूजन होता है.

लक्ष्मणदास, जेठाभगत, पुरुषोतम, विष्णुदास, मुगटराम महाराज आदि इनके शिष्य थे .

संतराम महाराज ने ` गुरु बावनी ` नामक हिन्दी ग्रंथ की रचना की है, जो बावनी परंपरा की एक सुन्दर कड़ी है.

सद्गुरु मिलने पर मन की निर्विकल्प स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

मेरे मन की क्या कहूँ धाता ओरम् ओर,
सतगुरु मोए आन मीले, जब चित्त बैठा एक ठोर । [2]

मनोनाश की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

मन मेरा तो गल गया है जैसा सिंधु लूण,
सतगुरु मोए आन मीले, तब तार लिया एक सूण । [3]

---

1. आधुनिक गुजरात-ना संतो- डा. केशवलाल ठक्कर, पृ. 12 से उद्धृत.
2. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा, डा. योगीन्द्र त्रिपाठी, पृ. 199.
3. वही,

कैवलपुरी - सं. 1815-1905 वि०

कैवलपुरी का जन्म सं. 1815 वि. में माना जाता है. वे राजवंशी 'भायात' थे. सं. 1840 वि. में वे इडर के छोखानाथ अखाड़े में सेजापुरी स्वामी से मिले और इन्हें अपना गुरु बनाया. डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी अखा की परंपरा के हरिकृष्ण को भी कैवलपुरी का गुरु मानते हैं.[1] सेजापुरी के समाधिस्थ होने के बाद इन्होंने अपनी गद्दी की स्थापना की और प्रतिदिन 360 'रोटले' कुत्तों को डालकर पुण्य अर्जित किया. सं. 1855 में वे इडर से उमरेठ आये और यहाँ ही इन्होंने सं. 1905 वि. में समाधि ली. इडर के उपरांत डाकोर, उमरेठ और चोटण में इनकी गद्दियाँ हैं. इन्हें कालिका माता का इष्ट था.

बारह राशि, सातवार, द्वादश मास, पंद्रह तिथियाँ आदि विषयों पर इन्होंने काव्य सर्जन किया है. इनकी वाणी अनुभव सिद्ध महात्मा की वाणी है. इनकी वाणी में अखा-सा वेदांत, मीरा की सी गूढोक्तियाँ और भोजा के से 'चाबखे' और आत्मानुभव का उल्लास प्रतिध्वनित होता है.[2]

कैवलपुरी स्पष्ट रूपसे मानते हैं कि बिना अधिकार ज्ञान प्राप्ति नहीं हो सकती --

मंकड़ेकूं देवे ज्ञान, पावे ते कैसो मान,
तोय ये पाषाण नावें, तरे नहीं तारशी ।
'केवल' विवेक करी, नुगरेकूं कहा कीजे,
देखे दोष ओरूका तो, घोर में क्या डारशी ।।[3]

ब्रह्मज्ञानी के आचरण के संबंध में वे कहते हैं --

दोष जगत का कबु न देखे,
पूरण ब्रह्म चराचर पेखे ।[4]

---

1. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा, पृ. 177.
2. वही, पृ. 170
3. गुजरातके संतोंकी हिंदी वाणी, पृ.264.
4. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा, पृ. 194.

त्रिविक्रमानंद - सं. 1816-1876 वि0

जंबूसर के निवासी त्रिविक्रमानंद का जन्म सं. 1816 वि0 में हुआ था. वे औदीच्य सहस्त्र ब्राह्मण थे. बचपन से ही इनका मन वैराग्य की ओर झुका हुआ था. इनके गृहत्याग के संबंध में यह कहा जाता है कि इनकी शादी हो रही थी, पाणिग्रहण का अवसर था, तब पुरोहित के `सावधान` कहने पर इन्हें आत्मबोध हुआ और वे मंडप से उठ कर काशी भाग गये. यह घटना समर्थ रामदास स्वामी के गृहत्याग की घटना का स्मरण दिलाती है , 30 वर्ष की आयु में इन्होंने संन्यास धारण किया और वे सूरत आकर रहने लगे. इन्होंने आनंदराम शास्त्री से सिद्धान्त कौमुदी तथा वेदांत का अध्ययन किया. सं . 1876 वि0 में इनका देहावसान हुआ. इनके शिष्यों में विजयानंद का नाम उल्लेखनीय है , त्रिविक्रमानंद के बाद वे अखाड़े के अधिपति बने .

त्रिविक्रमानंद व्रज, संस्कृत, उर्दू, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं के ज्ञाता थे. इनकी हिन्दी रचनाओं में सवैया, कवित्त, धोल तथा कुछ फुटकल पद उल्लेखनीय हैं .

सत्संग का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं --

अरे मन बावरे तूं, कहा संत का मान रे ।
दुर्लभ देह मनुष्य तूं पायो, चूके मत यह दाव रे ।। [1]

इनकी मन मस्ती का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

` त्रिविक्रम ` हाथी पैं बेठके, कोड़ी का मँगना सो क्या । [2]

जीवणदास - निर्वाण सं. 1887 वि0

जीवणदास के गुरु का नाम भीम साहेब था, जो रवि-भाण संप्रदाय के संत थे. वे स्पष्ट रूप से कहते हैं --

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, पृ. 271.

2. वही, पृ. 274.

` दासी जीवण भये गुरु भीम केरे चरण । ` [1]

वे जाति के चमार थे और गोंडल के निकट स्थित घोघावदर गाँव में रहते थे. इनके पिता का नाम जगाभाई एवं माता का नाम सोमबाई था.

जीवणदास संतों को हरिस्वरूप और स्वयं को इनकी दासी मानते थे –

मैं दासी सब संतन केरी, पाउ पीयाला अविनाशी ,
खोजखबर तुं जो दिल भीतर, रोम रोम पर ले लागी । [2]

इनके पदों में ` दासी जीवण ` की छाप के कारण कुछ भक्तजन इन्हें भक्त कवयित्री मानते हैं. आज भी सोरठ की लोकजिह्वा पर इनके पद रमते हुए नज़र आते हैं. इनका निर्वाणकाल सं. 1887 वि० में माना जाता है .

इनके हृदय की मस्ती इस पंक्ति में देखिए --

मैं मस्ताना मस्ती खेलूँ, मैं दीवाना दर्शनका । [3]

इस प्रकार दासी जीवण ने भक्ति, नामस्मरण और मन-मस्ती के पदों की रचना की है.

हर्षदास-हरखजी महेता – जन्म सं. 1817 वि०
================

हर्षदास का जन्म भावनगर जिले के सिहोर नामक नगर में सं. 1817 वि. में हुआ था. इनके पिता का नाम दामजी महेता था वे वणिक थे. हर्षदास भावनगर के ठाकुर साहेब तखतसिंह के कारभारी थे. हर्षदास,हरखजी महेता नाम से भी पहचाने जाते थे. वे वैष्णव भक्त थे. इन्होंने व्रज भाषा का अध्ययन किया था. ` भक्त मुकुट मणि `, ` तीर्थ आज्ञा प्रबंध `, पदसंग्रह

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 175.
2. आधुनिक गुजरातना संतो- डा. केशवलाल ठक्कर, पृ. 23.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, पृ. 177.

और कुछ फुटकल पदों की रचना इन्होंने की है .[1]

मुक्तानंद स्वामी - सं. 1814-1886 वि०

मुक्तानंद स्वामी का जन्म सं. 1814 वि. में अमरेली नामक नगर में हुआ था. इनके पिता का नाम आत्माराम एवं माता का नाम राधा था. बचपन में इन्हें मुकुंददास नाम से पुकारा जाता था. बचपन से ही इनमें वैराग्य की भावना प्रबल थी, इसलिए ही वे युवावस्था में ही गृहत्याग करके गुरु की खोज करने निकले. इन्होंने मूलदास और रामानंद से ज्ञान प्राप्त किया और अंत में सहजानंद से दीक्षा प्राप्त की . इन्होंने भुज की व्रज भाषा पाठशाला में अध्ययन भी किया था. वे संगीत के ज्ञाता एवं अच्छे गायक भी थे .

मुक्तानंद ने ` पंचरत्नम् ` काव्य में विवेक, ज्ञान, वैराग्य, ध्यान और विज्ञान का महत्व समझाया है. इनका मानना है कि बिना गुरु ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता -

गुरु बिना कोऊ ज्ञान न पावे,
कोटिक साधन करि मर जावे ।

इन्होंने ` विवेक चिंतामणि ` एवं ` सत्संग शिरोमणि ` नामक हिन्दी ग्रंथों की रचना की है. [2] इनके उपरांत कुछ फुटकल पद भी इन्होंने लिखे हैं .

कृष्णभक्ति की इनकी कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं --

मेरो तो सुखदायक तुम ही मुरारी ।
तुम बिन और देव नही जाचु एही हद टेक हमारी ।
लोभीनकुं जैसे धन सुखदायक,कामिनकुं जैसी नारी ।[3]

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन,डॉ. एन.ए.व्यास, पृ. 88.
2. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो,डाह्याभाई देरासरी,पृ.47.
3. वही.

रंगीलदास- उपस्थितिकाल - सं. 1860 वि०

रंगीलदास का जन्म राणा जाति में हुआ था. वे सूरत के निवासी थे और तापी नदी के किनारे अश्विनीकुमार घाट पर सत्संग किया करते थे. इन्होंने `रंगील सतसई` नामक ग्रंथ की रचना की है. इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का महत्त्व समझाया गया है .

भाषा की दृष्टि से इनकी पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

पंछी अब क्यों सो रहा, देख मच्यो री शोर,
गाफील नैना खोलीए, अब तो भयो री भोर ।[1]

लल्लूजीलाल- सं. 1820-1882 वि०

गुजरात के औदीच्य ब्राह्मण लल्लूजीलाल आगरा के निवासी थे. इनका जन्म सं. 1820 वि. में हुआ था. वे कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदी गद्य-ग्रंथों का निर्माण करते थे. इन्होंने व्रज भाषा मिश्रित खड़ी बोली में प्रेमसागर नामक गद्य ग्रंथ की रचना की है, जिसमें भागवत के दशम स्कंध की भावना को लिया गया है.

लतायफ हिन्दी, राजनीति वार्त्तिक, माधव विलास, सतसई की टीका, सिंहासन बत्रीसी, माधवानल आदि ग्रंथों का इन्होंने भावानुवाद के रूप में प्रणयन किया है. इनको हिन्दी गद्य का जन्मदाता एवं प्रवर्तक कहा जाता है.[2] सं. 1882 में इनका देहावसान हुआ.

लल्लूजी लाल के गद्य का एक उदाहरण `प्रेमसागर` से दिया जा रहा है --

इसमें कीतनी एक दूर जायके देखते क्या है, की कंसके धोबी धोऐ कपड़ों की लादीयाँ लादे पोटें मोटें लीये, मद पीये, रंग राते, कंस जस गाते नगर के बहारसें चले आते हैं . ...

---

1. हिन्दी साहित्य को गुजरात के संत कवियों की देन, डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. 194.

2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 49.

इतनी बात के सुनते ही वीन में से जो बड़ा धोबी था सो हंसकर कहने लगा , --

राखैं घरी बनाय, व्है आवौ नृप द्वार लौं
तब धीजी पट आये, जो चाहो सो दीजियो -
बन बन फीरत चराबन गैया, अहिर जाति कामरी उढैया. [1]

निष्कुलानंद - सं. 1822-1904 वि०

निष्कुलानंद का जन्म सं. 1822 वि. में हुआ था. वे कच्छ के विश्वकर्मा ब्राह्मण थे. इन्होंने तीन हजार पदों की रचना की है. इनके पदों में त्याग और वैराग्य का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है. [2] इन्होंने हिन्दी में भी कुछ पद लिखे हैं , सं. 1904 वि. में इनका देहावसान हुआ .

दास होथी - निर्वाण सं. 1905 वि०

दास होथी का जन्म कच्छ के नेकनाम गाँव में एक संघी मुसलमान के घर हुआ था. इनके पिता का नाम सिकंदर था. बचपन से ही इन्हें ईश्वरभक्ति में रुचि थी. वे मोरार साहेब की भजन मंडली में हरिजनवास में जाया करते थे. इन्होंने मोरार साहेब को अपना गुरु माना था. सिकंदर को अपने पुत्र की इस प्रकार की रहन सहन पसन्द नथीं. इन्होंने अपने पुत्र को अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि हमारे वंश में हाथों में तलवार होती है तंबूरा नहीं, किंतु हिन्दू-मुस्लिम धर्म की एकता के उपासक दास होथी ने इनकी एक न सुनी . अंत में तंग आकर पिता ने अपने पुत्र को जहर देकर एक कोठरी में बंद करवा दिया. सिकंदर उसी रात को मोरार की भजन मंडली में गये, तो वहाँ इन्होंने होथी को बैठा हुआ पाया, घर पर आकर कोठरी का द्वार खोला तो इन्हें सोया हुआ पाया. यह देखकर वे अपने पुत्र के चरणों में गिर पड़े और अपने अपराधों के लिए क्षमा चाही . दास होथी का देहावसान

1. गुजराती अने हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ. 51.
2. गुजराती साहित्य, अनंतराय रावल, पृ. 207.

सं. 1905 वि. में हुआ.

दास हाथी ने अनेक पदों की रचना की है. इन्होंने अपने पदों में गुरु की महिमा के गीत गाये हैं. वे कहते हैं कि जीवन को निर्मल करने के लिए गुरु की आवश्यकता है --

सद्गुरु शब्द का साबु पायके, भावे भवकीट धोया ।
होथीने गुरु मोरार भेटया देखत जमडा रोया ।। [1]

इस प्रकार एक मुसलमान कवि ने भी संत- काव्य परंपरा में अपना योगदान दिया है.

रणछोड़ जी दीवान
==============

ये नागर थे. इनके पिता का नाम अमरजी था. रणछोड़जी जूनागढ के दीवान थे. इन्होंने व्रज में कई ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनमें से ये प्रमुख हैं - कामदहन, शिवविवाह, शंखचुडाख्यान, त्रिपुराख्यान, कालखंज आख्यान, मोहनी छल, अंधकाख्यान, नागर विवाह और बुढेश्वर बावनी. [2]

इन ग्रंथों से इनकी विद्वता और भाषा-निष्ठा का पता चलता है.

ब्रह्मानंद - सं. 1828-1905 वि०
======

ब्रह्मानंद स्वामी का जन्म डुंगरपुर के निकटवर्ती सारण नामक गाँव में सं. 1828 वि. में बारोट परिवार में हुआ था. इनका मूल नाम ` लाडू ` था. वे जन्मसिद्ध कवि थे. इनके पिता का नाम शंभुदान गढवी एवं माता का नाम लालबादेवी था. इन्होंने व्रज की काव्य पाठशाला में आठ वर्ष तक पिंगल, अलंकारादि का अध्ययन किया था. सहजानंद स्वामी से इनकी प्रथम भेंट सं. 1860 वि. में हुई. सहजानंद स्वामी ने इनको दीक्षा देकर इनका नाम ब्रह्मानंद रखा. इन्होंने अहमदाबाद, वडताल, मूली आदि

----

1. आधुनिक गुजरातना संतों -डॉ. केशवलाल ठक्कर, पृ. 61.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 46-47.

स्थानों में स्वामी नारायण के मंदिरों का निर्माण करवाया. इनकी हिंदी रचनाओं में ` संप्रदाय प्रदीप `, ` सुमति प्रकाश ` ,` उपदेश चिंतामणि ` और ` ब्रह्मविलास ` नामक ग्रंथों के नाम लिए जाते हैं . [1] ` संप्रदाय प्रदीप ` सांप्रदायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ है. सं. 1875 वि. में यह ग्रंथ लिखा गया है .

` सुमति प्रकाश ` ग्रंथ में 20 विश्राम या अध्याय हैं. यह ग्रंथ सं. 1878 महा शुक्ल 5, बुधवार के दिन संपूर्ण हुआ था -

संवत अष्टादश सही, वर्ष अठोतर जाण ।
महा सुद पंचमी,वार बुद्ध पूरण ग्रंथ प्रमाण ।। [2]

हिंसा, चोरी, काम, पर नारी, मद्यपान आदि के त्याग का उपदेश देते हुए वे कहते हैं -

हिंसा अरु चोरी अनृत काम, अविश्वास दंभ पद गरब ठाम ।
परत्रिय अरुं द्यूतहि मद्यपान असुया अरु व्यसनहि क्रोध आन ।। [3]

` ब्रह्म विलास ` ग्रंथ में सवैया, कुंडलियाँ, छप्पय इत्यादि के द्वारा इन्होंने गुरुदेव, उपदेश, काल, तृण, मन, नारी निंदा, साधु आदि 23 अंगों का निर्माण किया है .

गुरुदेव का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं -

कहत है ब्रह्मानंद काय मन बानी करि ,
ऐसे गुरुराज सो हमारे किरतार है । [4]

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो- डाह्याभाई देरासरी, पृ. 42.
2. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन - डा. एन. ए. व्यास, पृ. 71.
3. वही , पृ. 72.
4. वही , पृ. 73.

करुणासागर - सं. 1829-1934 वि०

करुणासागर आलोच्य संत कवि हैं, अतः इनका विशेष परिचय अग्रिम पृष्ठों पर पृथक रूप से दिया जा रहा है. कालक्रमानुसार इनका यहाँ पर नामोल्लेख मात्र कर दिया गया है.

हरिदास - सं. 1830-1902 वि०

हरिदास का जन्म सं. 1830 वि. में सौराष्ट्र के कुंतलपुर नामक गाँव में हुआ था. वे जाति के क्षत्रिय थे. इनके पिता का नाम भाणजी था. इन्होंने बचपन से ही विभिन्न सत्संगों में जाने से, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की बातें सुनी थीं, जिसका प्रभाव इनके अंतर्बाह्य जीवन पर काफी पड़ा . इनकी ज्ञानभक्ति की निष्ठा और प्रतिभा के कारण रणछोड़जी दीवान जैसे विद्वान भी इन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे. वे ज्ञानमार्गी पहुँचे हुए संत थे.

हरिदास की रचनाओं में दुर्जन का त्याग, संसार की क्षणभंगुरता, ईश्वर की प्राप्ति आदि का वर्णन किया गया है. इन्होंने ईश्वर प्राप्ति के लिए योग- साधना का मार्ग बताया है -

हर जगह मौजूद है वह नज़र आता नहीं,
योग साधन के बिना, उसको कोई पाता नहीं । [1]

वे ईश्वर की प्राप्ति के लिए आंतरखोज का मार्ग बताते हुए कहते हैं -

क्या खुदाकूं ढूँढे बंदे, खुदा तेरी पास रे ।
------- - - -
घर में ढूँढा, बाहिर ढूँढा, ढूँढा श्वासोश्वास रे
`हरदास` हरदा भीतर पाया, सोया मेरी पास रे ।। [2]

---

1. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 298.
2. वही, पृ. 296.

देह की नश्वरता समझाते हुए वे कहते हैं --

देखो दुनिया में यारो, दमका भरोसा बी नहीं ।
कच्ची मट्टीकी काया, हाड चाम लोहु भरी ।। [1]

इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्द भी विद्यमान हैं .

पिंगलशी गढवी - अस्तित्वकाल सं. 1830-1880 वि.

पिंगलशी गढवी महेरामणसिंह के मित्र थे. इनका अस्तित्व सं. 1830 से 1880 वि. तक माना जाता है. वे वढवान के निवासी थे. इन्होंने वैकुंठ पिंगल नामक ग्रंथ की रचना की है. [2]

डुंगर बारोट -

डुंगर बारोट कड़ी-कलोल के निकटस्थित विजापुर के निवासी थे. वे चारण कवि थे. इन्होंने कुछ स्फुट पदों की रचना की है .

दलपत-

दलपत देवी के भक्त थे. वे विसनगरा नागर थे. संस्कृत कुवलयानंद का इन्होंने हिन्दी में अनुवाद करके इसे ` दलपत विलास ` नाम दिया है. वे सं. 1847 वि. में वर्तमान थे. [3]

दयाराम - सं. 1833-1909 वि०

दयाराम मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम महान कवि थे. इनका जन्म डॉ. सुभाष दवे के अनुसार चांदोद में और डा. नागर के अनुसार डभोई में सं. 1833 वि. भाद्रपद शुक्ल 11, शनिवार को हुआ था. [4] इनके पिता

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, पृ. 299.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो - श्री डाह्याभाई देरासरी, पृ. 31.
3. वही, पृ. 41.
4. अ- कवि दयाराम एक अध्ययन, पृ. 28,31.
   ब- दयाराम सतसई, पृ. 10.

का नाम प्रभुराम और माता का नाम महालक्ष्मी था. वे चांदोद के साठोदरा नागर थे. इनका बचपन चांदोद में नैसर्गिक वातावरण में बीता, जिसने इनके व्यक्तित्व में धार्मिकता और रसिकता को संजोया. 12 वर्ष की उम्र में माता-पिता की मृत्यु के बाद वे डभोई आकर रहे. इनका यौवन तीर्थाटन में बीता, जिससे वे देश की विभिन्न भाषाओं के परिचय में आये और विभिन्न अनुभवों के कारण इनकी विद्वता का विकास हुआ. इन्होंने तीन बार चार धाम की यात्रा की थी. वे सात बार श्रीनाथद्वारा गये थे. इनके जीवन के कुल 25 वर्ष यात्रा में ही व्यतीत हुए. वे आजीवन अविवाहित रहे. ऐसा कहा जाता है कि वे बायरन जैसे सुंदर थे. वे रसिक भी थे.

दयाराम संस्कृत के पंडित थे. गुजराती इनकी मातृभाषा थी और व्रज का इन्हें अच्छा ज्ञान था. वे बहुश्रुत बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कवि थे. प्रतिभासंपन्नों की अनिवार्य विशेषता-रसिकता इनमें भी थी. इनके काव्य-दीक्षा गुरु केशवानंद थे. [1]

दयाराम पुष्टिमार्गीय कवि थे. इन्होंने सं. 1858 में `मन मरजाद` एवं सं. 1861 वि. में `पाकी मरजाद` ली थी. [2]

वे अच्छे संगीतज्ञ भी थे. पुष्टिमार्गीय `हवेली संगीत` के वे ज्ञाता थे. वे तबला, मृदंग, सितार एवं जलतरंग के अच्छे जानकार थे.

दयाराम के 85 ग्रंथ गुजराती में प्रकाशित हैं, जिनमें से 20 ग्रंथ व्रजभाषा में हैं. इनकी 1000 से अधिक गरबियाँ प्रकाशित हुई हैं. इन्होंने व्रज भाषा में 46 ग्रंथ एवं सैंकड़ों पदों की रचना की है. सं. 1909, महा कृष्ण 5 सोमवार को इनका निधन हुआ.

व्रज भाषा में इनके निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित हैं - सतसैया, रसिक रंजन, वस्तुवृंद दीपिका, व्रजविलासामृत, पुष्टिभक्त रूप मालिका, हरिदास मणिमाला, क्लेशकुठार, विज्ञप्ति विलास, वृंदावन विलास, कौतुक रत्नावली, श्रीकृष्ण अकल चरित्र चंद्रिका, श्रीमद् भागवतानुक्रमणिका, पिंगलसार,

---

1. कवि दयाराम एक अध्ययन, डा. सुभाष दवे, पृ. 38.
2. दयाराम सतसई- सं. डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 13.

श्रीकृष्ण स्तवनामृत [लघु] मूर्ख लक्षणावली [सप्तदशी], संप्रदाय सार, नामप्रभाव बत्रीसी, पुष्टि पथसार मणिदाम, श्रीकृष्ण स्तवन चंद्रिका. इनके उपरांत 28 ग्रंथ अप्रकाशित हैं .

अब हम इनके कतिपय ग्रंथों का परिचय प्राप्त करेंगे.

<u>सतसैया</u> - मध्यकालीन साहित्य में दोहा लोकप्रिय माध्यम था. इसी छंद में सतसइयों का निर्माण हुआ है. तुलसी सतसई [सं. 1642], रहीम सतसई [सं. 1683], बिहारी सतसई [सं. 1704], रसनिधि सतसई [सं. 1717], मतिराम सतसई [सं. 1720], वृंद सतसई [सं. 1761], विक्रम सतसई [सं. 1850] आदि . गुजरात में ` सोरठियो दूहो भलो ` होने पर भी सतसई का आरंभ दयाराम से होता है. दलपतराम ने शामल के 700 दोहों का संकलन किया है और स्वयं भी एक सतसई लिखी है. दयाराम ने सं. 1872 में ` सतसैया ` की रचना की थी. इसमें कुल 731 दोहे हैं, जिनमें श्रीकृष्ण की महिमा का गान है किसी राजा की महिमा का नहीं -

> पुरूषोत्तम गोपीश श्री, कृष्ण मनोहर रूप ।
> तद प्रीत्यर्थ सुग्रंथ यह, नहि रिझवनको भूप ।। [1]

` सतसैया ` निम्नलिखित 15 प्रकरणों में विभाजित है - मंगलाचरण, भगवद स्तुति-विज्ञप्ति, प्रेमवर्णन, नायिका वर्णन, रूप वर्णन, संग वर्णन, भक्ति प्रकरण, वाद प्रकरण, नाम-माहात्म्य प्रकरण, आश्रय प्रकरण, विवेक प्रकरण , शिक्षा विवेक प्रकरण, प्रस्ताव प्रकरण, काठिन्यार्थ-प्रकरण और काव्य चातुर्य प्रकरण .

` भगवद स्तुति-विज्ञप्ति ` में वे कहते हैं कि मैंने कुटिलत्रिभंगी को अपने हृदय में बिठाने के लिए अपने हृदय को कुटिल बनाया है क्योंकि तलवार के अनुरूप म्यान होना चाहिए -

> चाहैं बसाये हृदय में, धारैं त्रिभंगी ध्यान ।
> जातें राख्यौं कुटिल उर, होहि असी सौं म्यान ।। [2]

---

1. दयाराम सतसई, सं. डॉ. अंबाशंकर नागर, दोहा-728.
2. वही, दोहा-18.

` संग वर्णन ` में वे सत्संग का महत्व समझाते हुए सज्जन का संग और दुर्जन का त्याग करने का संकेत करते हैं . वे सज्जन की प्रीति को 9 के समान सदा बनी रहने वाली और दुर्जन की प्रीति को 8 की तरह घटनेवाली मानते हैं --

दुरिजन सज्जन अष्ट नौ, प्रीति रीति पहिचान,
दुगने तिगुने चतुरसम, इत उत हान ही हान । [1]

` भक्ति प्रकरण ` में वे भक्ति को ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं कि ज्ञानी बड़ा और समझदार बेटा है और भक्त नासमझ छोटा बेटा है. छोटे बेटे पर जिस प्रकार माता-पिता का अधिक वात्सल्य रहता है, उसी प्रकार भगवान भी भक्त पर अधिक वात्सल्यभाव रखते हैं . [2]

` नायिका वर्णन ` में वे क्रियाविदग्धा नायिका का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नायक-नायिका समाज के डर से अपनी अपनी अटारी पर दर्पण लेकर परस्पर पीठ दिखाते हुए एक दूसरे का प्रतिबिंब दर्पण में देखकर आनंदित होते हैं . नायिका हाथ जोड़कर मिलन का संकेत करती है, तब नायक मुदित होता है और तीन चुटकी बजाकर तीन पहर बाद मिलने का सांकेतिक वादा करता है . [3]

दयाराम, काव्य की श्रेष्ठता उसकी कठोरता में मानते हैं. वे कहते हैं कि दुर्ग, काव्य, कुष्मांड, कुच और ऊख ये जितने कठोर हों उतने ही अच्छे माने जाते हैं -

दुर्ग काव्य कुसमाँडु, कुच, ऊख कठोर त्यों सार । [4]

अतः इन उदाहरणों से स्वतः सिद्ध है कि दयाराम की ` सतसैया ` इनको हिंदी के मध्यकालीन कवियों में ऊँचा स्थान प्रदान करने को सक्षम है.

---

1. दयाराम सतसई, दोहा-301.
2. वही , दोहा-315.
3. वही , दोहा- 158.
4. वही , दोहा- 702.

रसिक रंजन - रसिकों का मन रंजन करने वाला यह ग्रंथ 17 प्रकरणों में विभाजित है. 'भगवदाश्रय' प्रकरण में वे अपने मन से कहते हैं कि तू पछतावा करके शकटका श्वान क्यों बनता है ? --

रे मन पसतात काहे, कियो तेरो होत कहा,
तुं करता वेसो जेसो शकट खेंचे श्वान है । [1]

भगवान की कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं शक्ति का परिचय देते हुए वे कहते हैं --

रजको बनावे शैल, गिरि चाहे रेनू करे,
वन्हिमें दिखावे शीत, हीम आग लाय दे । [2]

क्लेश कुठार - 'क्लेश कुठार' दयाराम रचित, मानसिक तनाव को दूर करने की अमोघ औषधि है, इसमें 155 दोहे, 25 छप्पय और कुछ कुंडलियाँ हैं.

वस्तुवृंद दीपिका - इस ग्रंथ में दयाराम ने 1 से लेकर 108 अंक तक प्रत्येक अंक से संबंधित वस्तु का नाम कृष्ण से जोड़ा है. यह एक अनूठा ज्ञानकोष है.

श्रीकृष्ण अकल चरित्र चंद्रिका - इस ग्रंथ में भगवान कृष्ण के अकल चरित्रों का वर्णन है. भगवान ने तेजस्वी दीपक में काजल बनाया और काले नाग के मस्तक पर तेजस्वी मणि बनाया. भगवान की लीला अगम्य है.

इस प्रकार दयाराम हिन्दी के सर्वोत्तम कवि कहे जा सकते हैं.

प्रेमानंद स्वामी 'प्रेमसखी' - सं. 1835-1901 वि०

प्रेमानंद स्वामी स्वामीनारायण संप्रदाय के प्रमुख स्थान गढडा में रहते थे. वे संगीत के जानकार थे एवं अच्छे गायक भी थे. इनकी वाणी में ईश्वर-दर्शन की पिपासा है. इन्होंने स्वयं को गोपी मानकर कृष्ण लीला के

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन - डॉ. एन. ए. व्यास, पृ. 80.
2. वही, पृ. 82.

पद गाये हैं इसलिए इन्हें प्रेमानंद सखी या प्रेमसखी भी कहते हैं . वे सहजानंद स्वामी के साथ रहते थे .

प्रेमानंद स्वामी के पदों में भक्ति, वैराग्य एवं श्रृंगार का वर्णन देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नरसिंह और दयाराम के पश्चात् प्रेमसखी ही सर्वोत्तम कवि हैं. इन्होंने हिन्दी में 7000 एवं गुजराती में 3000 पदों की रचना की है .[1]

प्रेमानंद स्वामी के ` हो रसिया मैं तो शरण तिहारी `, ` मैं तो बिरद भरोसे बहुनामी ` एवं ` बिसर ना जाओ मेरे मीत ` पद इतने सुन्दर एवं भाववाही हैं कि गांधीजी की ` आश्रम भजनावलि ` में इन्हें स्थान मिला है. इनका एक विरह गीत भी दृष्टव्य है --

आई घटा गगन घन गरजत, सैयोरे ,
नंद नंदन बिन कल न परे जिया तरजे ।[2]

इस प्रकार पंथ के परे इनके पदों का अपना साहित्यिक मूल्य भी है.

बापू साहेब गायकवाड़ - सं. 1835-1899 वि०

बापू साहेब का जन्म सं. 1835 वि. में वडोदरा में यशवंतराव गायकवाड के कुटुम्ब में हुआ था.[3] वे बचपन से ही हरिरंग में रंगे हुए थे. वे सेना में जमादार थे, पर भक्त हृदय होने के कारण, नौकरी ठीक तरह से नहीं कर पाते थे और इन्हें अधिकारियों की डाँट-डपट सुननी पड़ती थी, इसलिए इन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया. जो स्थिति इनकी नौकरी में थी, ठीक वही स्थिति घर में भी थी, यहाँ भी इन्हें पिता एवं पत्नी की डाँट सुननी पड़ती थी. एक बार वे नरसिंह महेता की तरह हरिजनवास में भजन करने गये थे, यह जानकर पिता ने इनको घर से निकाल दिया और

1. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 48.

2. वही.

3. आधुनिक गुजरातना संतो - डॉ. केशवलाल ठक्कर, पृ. 37.

पत्नी अपने मैके चली गई . इससे इन्हें संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे भगवद् भक्ति में मस्त रहने लगे .

बापू साहेब ने निरांत एवं धीरा भगत को अपना गुरु माना. इन्होंने अपने पदों में ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य की त्रिपदी को महत्व दिया और साथ-साथ अखा की तरह बाह्याडंबरियों को भी आड़े हाथों लिया.

सहजानंद स्वामी - सं. 1837-1876 वि0

एक ओर रीतिकालीन कवियों की चाटुकारिता दिन दूनी रात चौगुनी हो रही थी, वहाँ गुजरात में एक ऐसी प्रतिभा का उदय हुआ, जिसने गुजरात की जनता में फैले अंधविश्वासों एवं कुरूढियों का डटकर विरोध किया, तथा विभिन्न वर्णों में बँटे समाज को एक सूत्र में बाँधने का सफल प्रयत्न किया वे थे सहजानंद स्वामी. इनका जन्मक्षेत्र उत्तर प्रदेश और कर्मक्षेत्र गुजरात रहा है. इन्होंने निम्न जाति के लोगों का उद्धार करके अधम उद्धारक का बिरुद पाया है. हिन्दी भाषी होने पर भी जनसमाज तक अपने विचार पहुँचाने हेतु इन्होंने प्रांतीय भाषा गुजराती में ही अपना उपदेश दिया है. इन्होंने शिक्षापत्री, वचनामृत और वेदरहस्य नामक ग्रंथों की रचना की है. वे अधम उद्धारक, पतित पावक और सदाचार प्रेरक माने जाते हैं .

स्वामीनारायण संप्रदाय के नियमों को समझाते हुए वे कहते हैं -

हिंसा न करनी जंतुकी, परत्रिया संग को त्याग ।
मांस न खावत, मद्य को पीवत नहीं बड़ भाग ।।
विधवा को स्पर्शत नहीं, करत न आत्मघात ।
चोरी न करनी काहुकी, कलंक कोऊ न लगात ।।
निंदत नहीं कोऊ देवके, बिन खपतो नहीं खात ।
विमुख जीवके वदन से, कथा सुनी नहीं जात ।। [1]

सहजानंद स्वामी ने स्वामीनारायण संप्रदाय की स्थापना करके

---

1. गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन - डॉ. एन.ए. व्यास, पृ. 70.

अंत्यजों के उद्धार हेतु धार्मिक सदुपदेश के अलावा सामाजिक रूप में भी उन्हें उचित स्थान दिलाया है. इनके सदुपदेश के कारण ही तत्कालीन अंत्यज-समाज विभिन्न व्यसनों से मुक्त होकर सामाजिक और धार्मिक उत्थान की ओर प्रवृत हुआ था.

जनकराज किशोरीशरण `रसिकअली` - उपस्थितिकाल सं. 1875 वि०

`रसिकअली` का अस्तित्व सं. 1875 वि. में था. इनका जन्म सुदामापुरी में हुआ था. वे अयोध्या के निवासी थे. और रामभक्त थे. इन्होंने दोहावली, अमर रामायण, कवितावली, जिज्ञासा पंचक और कुछ फुटकल पदों की रचना की है. [1] इनकी रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्रियतम प्रियामुख सलिल श्रमकन पोंछि हित सुतरेत ।

भोजा भगत - सं. 1841-1906 वि०

भोजा भगत का जन्म सौराष्ट्र के गलोल नामक गाँव में हुआ था. इनके पिता का नाम करसनदास एवं माता का नाम गंगाबाई था. वे जाति के पाटीदार थे. बचपन में 12 वर्ष की आयु तक वे दूध पर ही रहे थे. बाद में 12 वर्ष तक इन्होंने तप करके सिद्धि प्राप्त की थी. [2] गिरनार के रामेतवन नामक साधु को इनका गुरु माना गया है. वीरपुर के जलाराम इनके शिष्य थे. भोजा भगत अमरेली के फत्तेहपुर में भी रहे थे. वे अपने शिष्यों से सोहं-सोहं का जाप जपने की सलाह देते हुए कहा करते -

सोहं नाम जपो रे भाई, हरिभक्ति तूं है सुखदायी । [3]

इन्होंने दीवान विट्ठलराव को 150 `चाबखे` सुनाकर इनका हृदय परिवर्तन किया था. [4] इनका देहावसान वीरपुर में सं. 1906 वि. में

---

1. अखिल भारतीय हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. महोब्बतसिंह चौहान, पृ. 336.
2. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन-डा. रामकुमार गुप्त, पृ. 190.
3. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी-डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 302.
4. आधुनिक गुजरातना संतो- डा. केशवलाल ठक्कर, पृ. 64.

हुआ . इन्होंने `चाबखा`, पद, होरी पद, धोल, कक्का तथा तिथि ग्रंथों की रचना की है.

गुजरात में जिस प्रकार नरसिंह के प्रभातिये, अखा के छप्पे, दयाराम की गरबी, प्रीतम के पद, धीरा की `काफियाँ` प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार भोजा भगत के `चाबखे` भी प्रसिद्ध है. इनका मानना था कि जिस प्रकार `गलिये घोड़े` को चाबखा लगाने से वह ठीक तरह से चलता है, उसी प्रकार `गलिये समाज को` भी चाबखे की जरूरत पड़ती है. एक उदाहरण देखिए-

जीवने श्वास तणी सगाई, घरमां घड़ी न राखे भाई

\- - - - - -

प्राणिया भजी लेने किरतार, आ तो स्वप्नुं छे संसार ।[1]

आत्मा का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं -

लिख लिख के सब जुग लिख्यो री, पढ़के पंडित भयो री,
आतमराम को मर्म न जान्यो, मत को मान वध्यो री,
अंते तेरे को न सगो री ।[2]

गिरधर - सं. 1843-1908 वि०

गिरधर का जन्म सं. 1843 में वडोदरा जिले के पादरा तालुका के मासर नामक गाँव में हुआ था. वे दशालाड वैष्णव वणिक थे. मथुरा के राधा वल्लभी संप्रदाय के आचार्य रंगीलदासजी के साथ वे यात्रा पर निकलें और पुष्कर के पास आमधरा गाँव में थोड़े दिन रहकर ईश्वराधन करने पर इन्होंने आत्मसाक्षात्कार का संकल्प किया. गुरु पुरुषोत्तमदास जी से इन्होंने काव्य शास्त्र का अध्ययन किया . वे ग्रन्थों की रचना करके परोपकार हेतु ब्राह्मणों को दे देते थे, जिससे वे आजीविका प्राप्त कर सकें. इनका देहावसान सं.1908 वि. भाद्रपद कृष्ण 11 को हुआ .

---

1. आधुनिक गुजरातना संतो-डॉ. केशवलाल ठक्कर, पृ. 66,67.
2. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 305.

हिन्दी में इन्होंने दाण लीला, राधाकृष्ण रास, जन्माष्टमीनो सोहेलो, नरसिंह चतुर्दशीनी वधाई आदि ग्रंथों की रचना की है.

` राधा कृष्ण रास ` ग्रंथ में कृष्ण की छबि का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

मयूरन पीछ मुगट धरे,
नथ बेसर हार बिहार भरे । [1]

गिरधर ने कुछ चमत्कारयुक्त फुटकल पदों की रचना भी की है . उपदेशपूर्ण अधर बंध [जिसमें ओष्ठ स्थानीय शब्दों का अभाव हो] को देखिए --

दिन दिन करत घटत आयु छिन छिन
रटत न रघुनाथ कहा काज कीतो है । [2]

इस प्रकार गिरधर ने जनहिताय भक्तिपरक पदों की रचना की है.

दीन दरवेश - 18 वीं शती उत्तरार्ध, 19 वीं शती पूर्वार्ध
======

दीन दरवेश का उपस्थितिकाल 18 वीं शती का उत्तरार्ध एवं 19 वीं शती का पूर्वार्ध माना जाता है. ये लोहार जाति के थे. मिश्रबंधुओं ने इन्हें सौराष्ट्र का एवं मेनारियाजी ने इन्हें मेवाड़ का सिद्ध करने का प्रयत्न किया है. [3] मेवाड के राणा भीमसिंह इनके भक्त थे. दीन दरवेश ने पालनपुर के नवाब शेरखाँ एवं वडोदरा के महाराजा फतेहसिंहराव गायकवाड के निधन पर कुंडलियाँ लिखी हैं. इन्होंने गिरनार के नाथपंथी बालगिरी को अपना गुरु माना है, इसलिए इन्हें गुजरात का मानना उचित होगा .

दीन दरवेश ईष्ट इंडिया कंपनी में मिस्त्री का काम करते थे. युद्ध

---

1. कवि गिरधरनी कृतिओ- डा. देवदत्त जोशी-स्वाध्याय अक्टूबर-79, पृ.62.
2. वही, पृ. 78.
3. गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन - डॉ. एन. ए. व्यास, पृ. 107.

में इनका हाथ कट जाने से वे फकीर हो गये और देशाटन करने लगे. वृद्धावस्था में वे काशी पहुँचे. अपनी कुंडलियों में इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष बल दिया है. वे कहते हैं -

हिंदू कहें सो हम बड़े मुसलमान कहे हम ।
एक मूंग दो फाड़ हैं, कुण जादा कुण कम्म ।। [1]

जीवन की क्षणभंगुरता के साथ धर्म कार्य का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं -

माया माया करत है, खाया खरच्या नांहि ।
आया ऐसा जा गया, ज्यूं बादल की छांहि ।। [2]

कर्ताहर्ता खुदा ही है यह बताते हुए वे कहते हैं -

बंदा कहता मैं करूँ, करणहार करतार ।
तेरा कहा सो होय नहिं, होसी होवणहार ।। [3]

भाण - सं. 1900 विधमान

भाण मांडवी कच्छ के निवासी थे. इनके पिता का नाम मोहनजी था. वे गिरनारा नागर ब्राह्मण थे. इनका उपस्थितिकाल 18 वीं शती उत्तरार्ध और 19 वीं शती पूर्वार्ध माना जाता है. [4]

भाण ने भाण विलास, भाण बावनी एवं कुछ फुटकल पदों की रचना की है. इन्होंने मानव जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए मन को ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित करने का उपदेश दिया है. वे कहते हैं --

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डा. अंबाशंकर नागर, पृ. 374.
2. वही, पृ. 373.
3. वही, पृ. 373.
4. वही, पृ. 283.

श्रीलाल - रचनाकाल सं. 1875 वि०

श्रीलाल बाडेर के निवासी थे. इन्होंने सं. 1875 वि. के आसपास हिन्दी काव्य की रचना की थी. [1]

दयाल - रचनाकाल सं. 1887 वि०

दयाल गुजराती ब्राह्मण थे. इन्होंने ` दाय दीपक ` नामक ग्रंथ की रचना की है. [2]

नथुलाल द्विवेदी - सं. 1858-1928 वि०

नथुलाल द्विवेदी का जन्म सं. 1858 वि. में हुआ था. इनके पिता का नाम धानतराय था. वे साठोदरा नागर ब्राह्मण थे. धानतराय कालिका देवी के परम भक्त थे. कालिका के वरदान के फलस्वरूप नथुलाल का जन्म हुआ था. नथुलाल 8 वर्ष की उम्र से ही काव्य सर्जन करने लगे थे. वे संगीत के ज्ञाता थे और बंसरी तानपूरादि बजाने में कुशल थे. इनका गला भी बड़ा सुरीला था. वे आशुकवि भी थे. सं 1928 में इनका देहावसान हुआ. ऐसा कहा जाता है कि सौराष्ट्र के एक भक्त ने अपने 17000 पदों का उत्तर पदों में न मिले, तब तक घर न लौटने की प्रतिज्ञा की थी. नथुलाल ने चार दिन में 18000 पदों की रचना करके उस भक्त की चुनौती को पूरा किया था -

अष्टादश सहस्त्र पद उत्तर आपिया ।
चार दिन अखंड वाणीनी लहेरी ।। [3]

अनुभवगीता, तत्वबोध, गुरु गीता, कक्का, पद, तिथि, मास रचनाओं का इन्होंने प्रणयन किया है. संगीतज्ञ होने से इन्होंने बिलावल,

---

1. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 41.
2. वही, पृ. 48.
3. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 386.

भैरवी, आसावरी, मलहार, गौड़ी आदि रागरागिनियों का प्रयोग करके अपनी रचनाओं को संगीतात्मकता प्रदान की है. इन्होंने अन्य संतों की तरह ही गुरु का महत्व, संसार, देह की क्षणभंगुरता, वैराग्य आदि का निर्देश किया है .

इन्होंने कलम का महत्व समझाते हुए कहा है --

मारे बरछी कलम की लगे कोश हजार ।
दुनिया घा देखे नहीं, बड़ा कलम का मार ।।
बड़ा कलम का मार रूदे का घाव न रूझे ।
अक्कल के मेदान ढाल कागद से झूझे ।।
कहे नथू गुन जान, इनुसें सब ही हारे ।
लगे कोश हजार कलम की बरछी मारे ।। [1]

हरिसिंह - रचनाकाल सं. 1906 वि०

हरिसिंह का जन्म 19 वीं शती के उत्तरार्ध में भावनगर के निकट स्थित वरल नामक गाँव में हुआ था. वे हरिसंग नाम से भी पहचाने जाते थे. इनके पदों में हरिसंग की छाप मिलती है. `ब्रह्मवेत्ता राम` या `श्रीराम` इनके गुरु थे.

इन्होंने ज्ञानकटारी नामक हिन्दी ग्रंथ की रचना की है. [2] इनके काव्य में बाह्याचार का खण्डन है. इन्होंने गुरु बोध, सत्संग, सदाचार और सद्ज्ञान पर विशेष बल दिया है .

इनकी रचनाओं पर अजातवाद का प्रभाव विशेष रूप से दृष्टव्य है. वे कहते हैं -

अजन्माको जन्मा जाणे, बेदकी बात न माने ,
ताते जात कालहीके मुख में चबाई के । [3]

---

1. अर्वाचीन कविता, सुंदरम, पृ. 496.
2. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 317.
3. वही, पृ. 319.

जीवन में ज्ञान का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं -

ज्ञान को प्रकाश सो तो हीरा मणी रत्न जैसो । [1]

इनकी भाषा में हिन्दी के उपरांत अरबी-फारसी एवं गुजराती का प्रभाव भी परिलक्षित होता है .

जीवनलाल नागर
============

जीवनलाल नागर बुंदी के निवासी थे. इन्होंने व्रज एवं फारसी का अध्ययन किया था. वे बुंदी के राजघराने से संबद्ध थे. इनकी कविता की राजदरबार में काफी सराहना होती थी. इन्होंने उषाहरण, दुर्गा चरित्र, रामायण, गंगा शतक आदि ग्रंथों का निर्माण किया है. [2]

छोटम - सं. 1868-1941 वि०
====

कालक्रमानुसार छोटम का उपस्थितिकाल इस बीच आता है, किन्तु कायमपंथ के परिचय के अवसर पर इनका विशेष उल्लेख किया गया है, अतः यहाँ मात्र नामोल्लेख किया जा रहा है .

कल्याण -
======

कल्याण डाकोर के निवासी थे. इन्होंने हिन्दी में ` छंद भास्कर `, ` रसचंद्र ` और कुछ फुटकल पदों की रचना की है . डाकोर में इनका अखाडा भी विद्यमान है , [3]

राजा रणमल्लसिंह - जन्म सं. 1872 वि०
=============

राजा रणमल्लसिंह धांगध्रा के राजा अमरसिंह के राजकुँवर थे. इनका जन्म सं. 1872 वि. में हुआ था. इन्होंने भक्ति, नीति एवं श्रृंगार विषयक पद हिन्दी में लिखे हैं . [4]

---

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 318.
2. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 42.
3. मिश्रबंधु विनोद भाग-2, मिश्रबंधु, पृ. 827.
4. गुजरातके कवियोंकी हिंदी काव्य साहित्यको देन, डॉ. एन. ए. व्यास, पृ. 104.

हीराचंद कानजी -

हीराचंद कानजी मोरबी के निवासी थे और दलपतराम के समकालीन थे. इन्होंने ` पिंगलादर्श `, ` हीरा श्रृंगार ` एवं ` सुंदर श्रृंगार ` नामक ग्रंथों की रचना व्रज में की है . [1] वे लक्षण ग्रन्थ लिखने वाले आचार्य थे.

दलपतराम - सं 1876-1954 वि०

दलपतराम का जन्म सं. 1876 वि. में वढवाण में हुआ था. इनके पिता का नाम डाह्याभाई एवं माता का नाम अमृतबा था. इन्होंने भुज की व्रज भाषा पाठशाला में पिंगल, अलंकारादि का अध्ययन किया था. इनके धर्मगुरु का नाम भूमानंद और शिक्षागुरु का नाम देवानंद था. [2] प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान फार्बस साहब इनके शिष्य थे. [3] दलपतराम ने गुजरात विद्यासभा के मंत्री के रूप में भी कार्य किया था. इन्होंने हिन्दी में भी अपना यथायोग्य योगदान दिया है . इन्होंने ` दलपत पिंगल ` और ` काव्य दोहन ` जैसे ग्रंथ गुजराती साहित्य को दिये हैं .

दलपतराम ने राजकुमार महेरामणसिंह रचित ` प्रवीण सागर ` की अंतिम 12 लहरियों का निर्माण करके ग्रंथ को पूर्ण किया है. इन्होंने ` श्रवणाख्यान ` नामक आख्यान काव्य लिखा है, जिसे बलरामपुर के महाराजा दिग्विजयसिंह को प्रसन्न करने के लिए इन्हें अर्पित किया है. यह ग्रंथ संपादित होकर म. स. विश्वविद्यालय से प्रकाशित भी हुआ है .

श्रवण की पितृ भक्ति और त्याग से भरा हुआ यह आख्यान काव्य मिश्रबंधुओं को ` साधारण ` लगा है. [4] श्रवणाख्यान में 9 सर्गों में

---

1. गुजरातीओए हिंदी साहित्यमां आपेलो फालो, पृ. 61.
2. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ-डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 88.
3. वही.
4. गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो, डाह्याभाई देरासरी, पृ. 56.

804 छंद हैं. इस ग्रंथ को सं. 1924 की मकरसंक्रान्ति के दिन पूर्ण किया गया था -

संवत श्रुति भुज भक्ति भू जा दिन पर्व पवित्र ।
मकर क्रान्ति के घोस भी, पुरन श्रोन चरित्र । [1]

नवम सर्ग - 50

दलपतराम ने दिग्विजयसिंह की पितृभक्ति की प्रशंसा की है -

पितर भक्त यह पुहुमि पर, परम धर्म धर धीर ,
सुन्यो दिग्विजयसिंह नृप विश्व विदित वर वीर ।

दयानंद सरस्वती - सं. 1881-1940 वि०

दयानंद सरस्वती का जन्म सं. 1881 में मोरबी में हुआ था. वे प्रसिद्ध समाज सुधारक थे. इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश, पंचमहायज्ञ विधि, संस्कार विधि, ऋग्वेद भाष्य, यजुर्वेद भाष्य, वेदांग प्रकाश आदि ग्रंथों का निर्माण किया है , इन्होंने आर्य समाज की स्थापना की थी .

महात्यमराम - सं. 1882-1945 वि०

महात्यमराम का जन्म सं. 1882 वि. में खेड़ा जिले के सीमरडा नामक गाँव में हुआ था. इनके पिता का नाम हमीर और मातत का नाम गलबाई था. वे जाति के राजपूत थे. महात्यमराम का बचपन सत्संग एवं भक्ति में गुजरा था. इनके गुरु का नाम आदितराम था. नरभेराम और हरिराम इनके पट्ट शिष्य थे. इन्होंने `ब्रह्मचारी आश्रम` की स्थापना की थी. [2]

महात्यमराम अपने शिष्यों के साथ कानम, वाकळ और चरोतर के विभिन्न स्थानों में घूमते थे और जन समाज को उपदेश दिया करते थे. इन्होंने

---

1. श्रु=4, भुज=2, भक्ति=9 , भू=1 इन सबको विपरीत गति से गिनने से सं. 1924 होता है - गुजरात के हिंदी गौरव ग्रंथ - डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 90.
2. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन,डॉ.रामकुमार गुप्त,पृ.80.

बड़ी चिंतामणि, छोटी चिंतामणि, शब्द बाण सुधासिंधु, कक्का, मास, तिथि आदि रचनाओं का प्रणयन किया है . इनका देहावसान सं. 1945 वि. की वसंतपंचमी को हुआ. इनकी रचनाएँ कबीर के प्रभाव से अनुप्राणित हैं, वे कबीर की भाँति कहते हैं -

जमात कंई नहि सिद्धकी, हीराका नहीं ढेर ।
महातम हंस पंगत नहि, नहि साम्टा शेर ।। [1]

मानव जीवन की क्षणभंगुरता एवं जीवन में सदगुरु की आवश्यकता पर बल देते हुए वे कहते हैं -

काया राख मशाणकी, अंते उडी जाय ।
सेवो सदगुरु संतकु, महातम कारज थाय ।। [2]

इनकी भाषा पर चरोतरी गुजराती का प्रभाव है.

राधाबाई - दीक्षा सं. 1890

राधाबाई वडोदरा की निवासिनी थी. इन्होंने सं. 1890 में वडोदरा के वाड़ी विस्तार में स्थित रामनाथ महादेव में एक अवधूत से दीक्षा ली थी. [3] इन्होंने अवधूत के साथ तीर्थ यात्राएँ भी की थीं. देशाटन के कारण वे कई भाषाओं से अवगत हो गई थीं. इन्होंने हिन्दी में कुछ स्फुट पदों की रचना की है.

निर्मलदास - सं. 1882-1935 वि०

निर्मलदास का जन्म सं. 1882 वि. में अयोध्या के ब्राह्मण परिवार में हुआ था. इनके पिता का नाम बालाजी एवं माता का नाम पार्वतीबाई था. औद्धवदासजी इनके गुरु थे. निर्मलदास के व्यक्तित्व को देखते हुए हिन्दू और मुसलमान दोनों इनके शिष्य थे, जिनमें से प्रभुदास,

---

1. महात्म्य ज्ञान प्रकाश सं. 1996, पृ. 168.
2. वही, पृ. 174.
3. गुजरातके कवियोंकी हिंदी काव्य साहित्यको देन, डॉ. एन.ए.व्यास, पृ. 105.

जमनाबाई एवं कजरबाई के नाम उल्लेखनीय हैं .

निर्मलदास लखनऊ के नवाब के आश्रित थे, पर संसार से विरक्त होने के कारण वे सं. 1922 वि. में सूरत आये . इन्होंने सूरत में सं. 1935 वि. में भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा के दिन जीवित समाधि ली.

इनकी हिन्दी रचनाओं में ज्ञानपूर्ण बारहमासा, कुछ पद एवं साखियाँ उपलब्ध हैं.

इनकी रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं सद्गुरु के महत्व का वर्णन द्रष्टव्य है -

ये मजहब के फंदे तुम दोनों भुलाया हो ।
नाहक धोखा खाइया अरु पिव नहीं पाया हो ।। [1]

\- - - - - - -

सतगुरुजी से ध्यान लागा हो,
चोरासी से तुरत बचाए, कर लिया आप समाना हो । [2]

जगजीवनदास -

जगजीवनदास सूरत के निवासी थे और निर्मलदास के शिष्य थे. [3] इन्होंने `जगजीवन विलास` नामक सर्गबद्ध ग्रंथ की रचना की है. इन्होंने अपनी रचनाओं में मानवजीवन का हेतु समझकर हरि स्मरण करने की सीख दी है .

जामसुता जाडेजा प्रतापबाला -

जाडेजा प्रतापबाला जामनगर के महाराजा रिड्मल जी की पुत्री थी. इनका जन्म सं. 1891 वि. में हुआ था. बचपन से ही इन्हें कविता

1. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 394.
2. वही, पृ. 397.
3. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन,डॉ. रामकुमार गुप्त,पृ. 207.

करने का शौक था. `प्रताप कुंवरी रत्नावली` इनके पदों का संग्रह है. [1] इनकी रचनाएँ भक्तिभाव से पूर्ण होती हैं.

अविनाशानंद - सं. 1890-1939 वि०

अविनाशानंद का जन्म सं. 1890 में विरमगाम में हुआ था. वे विसनगरा नागर थे. इनका बचपन का नाम मोतीलाल था. इनके पिता का नाम भवानीशंकर और माता का नाम यमुनाबाई था. भाभी के कटु व्यवहार के कारण इन्हें संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे जेतलपुर के मंदिर में आनंद स्वामी के पास रहने लगे. अयोध्याप्रसाद एवं वासुदेवानंद स्वामी के जीवन का इन पर काफी प्रभाव पड़ा. दीक्षा लेने के बाद इनका नाम अविनाशानंद रखा गया. सं. 1939 के मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया के दिन इनका देहावसान हुआ.

इनकी काव्यरुचि भुज की व्रज भाषा काव्यशाला में अध्ययन से विकसित हुई. इन्होंने वासुदेव महात्म्य, भाषा भूषण, हरिरस पिंगल, वेदांत चूर्ण आदि ग्रंथों की रचना की है. [2] इनकी रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है --

लोक नगर के देखे डगर में ठाडे सब नरनार
अविनाशानंदकु जेल न कीजो, छोटी में अति सुकुमार । [3]

सविता नारायण - जन्म सं. 1896 वि०

सविता नारायण का जन्म सं. 1896 में सूरत में हुआ था. वे वड़नगरा नागर थे. इन्होंने विश्वेश्वरनाथ नामक विद्वान से पिंगल एवं अलंकारशास्त्र का अध्ययन किया था. [4] इन्होंने गुजराती से हिन्दी में अनुवाद किये हैं.

---

1. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, डा. एन.ए. व्यास, पृ. 106.
2. वही, पृ. 112.
3. अर्वाचीन कविता - सुंदरम, पृ. 524.
4. गुजरात के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन, पृ. 108.

उद्धव उपनाम औघड़ - जन्म सं. 1897 वि०

औघड़ का जन्म सं. 1897 वि. में हुआ था. वे लखतर के औदीच्य ब्राह्मण थे. [1] वे लखतर दरबार में करणसिंह जी के नाम से पहचाने जाते थे. इन्होंने कर्णभक्तमणि नामक ग्रंथ की रचना व्रज भाषा में की है.

काजी अनवर - सं. 1899-1972 वि०

काजी अनवर के पूर्वज अरबस्तान के निवासी थे. भारत में जब मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ, तब धर्म-सुधार हेतु इनके पूर्वज भारत आये थे. इनके पिता आजामियां अनुमियां के वंशज गुजरात के पाटण में आकर बस गये थे. अनवर का जन्म विसनगर में सं. 1899 के वैशाख कृष्ण 7, शुक्रवार को हुआ था. बचपन से ही वे वैरागी थे और साधु, संत, फकीर और महात्माओं के संग रहते थे. इन्होंने सैयद हैदरशाह को अपना गुरु माना था. बचपन से वे अरण्यों और कब्रस्तानोंमें घूमते रहते थे और दो तीन दिनों तक निराहार भी रहा करते थे. वे अत्यंत नम्र थे. धन वे गरीबों को बाँट देते थे. आबू गिरनार और उत्तर गुजरात के नगरों से मुमुक्षु इनके दर्शनार्थ आया करते थे. इनका इन्तकाल पालनपुर में पोष कृष्ण 2, शनिवार सं. 1972 वि. में 2-30 बजे हुआ था.

इनकी रचनाओं में गरबी, भजन, पद आदि मिलते हैं. वे स्वयं को कवि कभी नहीं मानते थे --

मैं शायर नहीं और कवि मैं नहीं हूँ

- - - - - - -

त गणको और र गणको मैं मनमें न लाया ।
मैं तो मेरे प्यारे का है गुन गाया ।। [2]

ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

---

1. मिश्रबंधु विनोद भाग-3 अ.2, मिश्रबंधु पृ. 1076.

2. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी, डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 337.

आकाश देखा, पाताल देखा, देखा सभी गगन में रे भाई,
तिन लोक में उसको देखा, रमता सबके तन में । [1]

प्रेम मार्ग का महत्व समझाते हुए वे कहते हैं -

प्रेम बिना पिया कभी मिले नहीं, प्रेम पिया पर राखो रे भाई,
सब दुनिया सें तोड़के जल्दी, पियासंग दिल जोडो । [2]

उपरोक्त संत कवियों के अतिरिक्त इस शती में माणिक कविराज, मयाचंद, महासिंह सेवक, कुशलधीर उपाध्याय, बीसाजी, जीवन विजय, जैसा लांगा, रत्नपाल, वत्सराज-प्रेमरंग, बिहारीदास, देवहर्षमुनि, ईश्वर-रामजी, रामप्रसाद, दयारामदास, गोपालजी, बापू फकीर, दयाल, नर्मद, उन्नडजी, माणिकदास आदि कवियों ने भी ग्रंथ या स्फुट पदों की रचना करके जनजीवन को गतिमान करके उस विकास परंपरा को आगे बढ़ाने में अपना मूल्यवान योगदान दिया.

ऊपर हमने कालक्रमानुसार विभिन्न संप्रदायों के संत कवियों का परिचय प्राप्त करते हुए गुजरात में इस विकास परंपरा का अवलोकन किया है. इस अवलोकन से कुछ बातें जो स्पष्ट रूप से सामने आती हैं, उनमें पहली तो यह है कि इन संत कवियों में कुछ ऐसे हैं, जो विशुद्ध रूप से कवि हैं और भुज की व्रज भाषा काव्यशाला में काव्यशास्त्र का विधिवत अध्ययन करके कवि कर्म की ओर प्रेरित हुए हैं . दूसरी बात यह भी है कि इनमें से कुछ कवि अपनी काव्य प्रतिभा के साथ ही लक्षणग्रंथों का निर्माण करके आचार्य पद को प्राप्त हुए, जो मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की निजी विशेषता रही है .

ये संत, कवि के साथ ही समाज सुधारक भी रहे हैं. इनकी रचनाओं से यह प्रकट है कि ये संत, समाज सुधारक अधिक रहे हैं और समाज को नयी दिशा प्रदान करने के लिए ही इन्होंने कविता को माध्यम बनाया है. आत्मा-नुभूति, रहस्यानुभूति या आध्यात्मिक भावभूमि को स्पर्श करने तथा उसे जन-

---

1. आधुनिक गुजरातना संतो - डॉ. केशवलाल ठक्कर, पृ. 167.
2. वही, पृ. 169.

सुलभ बनाने के लिए इन्होंने विभिन्न प्रतीकों, बिंबों, अन्योक्तियों, उपमानों आदि का सहारा लिया है. अतः स्वाभाविक रूप में ` घुणाक्षर न्यायेन ` इनकी रचनाओं में साहित्यिकता और काव्यात्मकता का समावेश हो गया है. इस संबंध में यह भी हमें ध्यान रखना है कि इन संत कवियों का मूल्यांकन केवल साहित्यिकता या काव्यत्व के आधार पर करना न केवल उनके प्रति अन्याय है, वरन् अपनी अनभिज्ञता का प्रदर्शन करना भी है. अंग्रेजी आलोचक जोनसन ने बहुत ही ठीक कहा है कि किसी लेखक की न्यायपूर्ण आलोचना करते समय हमें अनिवार्य रूप से उसके समय एवं विभिन्न परिस्थितियों के मध्य विचरण करते हुए, उनका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिए और साथ ही उस समय की आवश्यकताओं के निरीक्षण-परीक्षण के पश्चात् उसकी पूर्ति के साधनों की भी शोध कर लेना चाहिए. अनन्तर उन साधनों का उपयोग लेखक-विशेषने किस रीति से किया है, इसके सम्यक् अध्ययन के पश्चात् ही उसके संबंध में किसी प्रकार का विवेचन प्रस्तुत किया जाना चाहिए .[1] तत्कालीन समाज में धर्मांधता, बाह्याचार, अंधविश्वास आदि की विद्यमानता के साथ ही धर्म-अध्यात्म के मर्म को भली भाँति न समझ पाने की समस्या भी थी. उन्हीं समस्याओं की जड़ में जाकर संतों ने उनका निदान किया है.

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने अपने ` साहित्य का मर्म ` नामक निबंध में कहा है कि संस्कार समाज और काल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं , अतः किसी काल-विशेष के साहित्य का मूल्यांकन करते समय ` विवेक ` से ही काम लेना चाहिए, क्योंकि हमारे देश के मनीषियों ने ` साहित्य की चारुता ` के लिए विश्वजनीन बृहत्तर नैतिक पटभूमिका ही सहारा लिया है. " एक युग के काव्य के मर्म को दूसरे युग का सहृदय तब तक नहीं समझ सकता जब तक इन रूढ, किन्तु वस्तुतः किसी कारणवश आरोपित मूल्यों की ठीक ठीक जानकारी न हो . "[2]

---

1. अज्ञो- एक अध्ययन - एच.एच. बुच, पृ. 4 से उद्धृत .
2. निबंधमणि- सं. कृष्णचंद्र वर्मा, पृ. 169.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य के लिए लोकमंगल की भावना तथा व्यापक धर्म-भूमि को अनिवार्य माना है यह तो साहित्य जगत में स्थापित सत्य है. उन्होंने अपने निबंध ` काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था ` में कहा है कि " मंगल अमंगल के द्वंद्व में कवि लोग अंत में मंगल शक्ति की जो सफलता दिखा दिया करते हैं, उनमें सदा शिक्षावाद [Didacticism] या अस्वाभाविकता की गंध समझकर नाक-भौं सिकोड़ना ठीक नहीं ." [1] इस दृष्टिकोण से भी आलोच्य संत कवि की परंपरा को परखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें लोकमंगल की भावना किस रूप और परिमाण में विद्यमान थी. अतः इन संत कवियों का मूल्य स्वतः स्पष्ट है .

इन संत कवियों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इन्होंने मध्य कालीन परंपरित रूढियों या आरोपित मूल्यों-ब्रह्म,जीव,जगत एवं कपटी माया का वर्णन एवं इनका पारस्परिक संबंध, गुरुमहिमा, नामस्मरण, भक्ति, प्रेम, विरह, हिंदू-मुस्लिम एकता, सदुपदेश आदि - की भी सफलतापूर्वक चर्चा करते हुए उनके परिणामों का भी संकेत किया है.

इनकी सबसे बड़ी विशेषता है ` सार्व वर्णिकता `. भरतमुनि ने नाटक के संबंध में जिस ` सार्व वर्णिकता ` का उल्लेख किया है वह गुजरात की संत परंपरा में सामाजिक रूप में साकार हो उठा है अर्थात् इन संतों में एक ओर नागर और औदीच्य ब्राह्मण थे तो दूसरी ओर पाटीदार,राजपूत वैश्य, लोहार, सोनार,मुसलमान, चमार, धुनिया आदि सवर्ण और अंत्यज जाति के भी संत थे. ये सब बिना किसी जाति-वर्ण भेद के समान रूप से सम्मान प्रतिष्ठा और पूज्यभाव के अधिकारी थे.

ऊपर हमने जिन संत कवियों का परिचय प्राप्त किया है वे किसी न किसी संप्रदाय से जुड़े हुए हैं. अतः अब हम अग्रिम पृष्ठों पर इन संप्रदायों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे .

---

1. निबंधमणि - सं. कृष्णचंद्र वर्मा, पृ. 78.